राजपुर –परसू (बिजनौर), बिसौली (बदायूँ), लाल किला, अंतरजीखेड़ा, बहदराबाद, बड़ागांव, आंवखेड़ी, बहरिया सैफई, नसीरपुर, हस्तिनापुर, अहिछत्र, तथा श्रृंगबेरपुर आदि पुरास्थलों के उत्खनन से गैरिक मृदभाण्ड प्राप्त हुये हैं गैरिक (गेरुए) अथवा कपिश रंग के मिट्टी के पात्रों को प्रो. बी.बी. लाल ने रंग के आधार गैरिक मृदभाण्ड का नाम प्रदान किया है। इस प्रकार के मृदभाण्ड़ों के लिए, 'गैरिक मृदभाण्ड' या 'गेरू पुते हुए मृदभाण्ड' (Ochre Colured) या ओ.सी.पी. आदि नाम प्रचलित है। गेरुए रंग के बर्तन हाथ लगने मात्र से चूर–चूर होने लगते हैं।

कालक्रमानुसार दोआब के इस क्षेत्र में कृश्ण–लोहित मृदभाण्ड (Black & Red Were) या ओ.सी.पी. आदि नाम प्रचलित हैं। गेरुए रंग के बर्तन हाथ लगने मात्र से चूर–चूर होने लगते है।

कालक्रमानुसार दोआब के इस क्षेत्र में कृश्ण–लोहित मृदभाण्ड (Black & Red Ware) या चित्रित धूसर मृदभाण्ड (Painted Grey Ware) के पूर्व गैरिक मृदभाण्ड प्रचलित थे। प्रो.बी.बी. लाल ने चित्रित धूसर पात्र परम्परा के आरम्भ की तिथि 1100 ई.पू. निर्धारित की है।[6] इसी कारण गैरिक संस्कृति को इससे प्राचीनतर तिथि प्रदान करते हुए 1200 ई. पू. से पहले रखा गया है। ''अभी तक गैरिक मृदभाण्डों की कोई भी रेडियों कार्बन (C^{14}) तिथि ज्ञात नहीं है।''[7]''समय की जिस गति से रेडियो से प्रभावित धातुओं का विच्छेद होता है वह स्थिर और निश्चय की जाने योग्य हैं।''[8] इस प्रकार कहा जा सकता है कि ''गैरिक मृदभाण्ड परम्परा ऊपरी गंगा घाटी में ग्राम्य जीवन का सबसे पहला उदाहरण प्रस्तुत करती है किन्तु अधिकांश पुरास्थल एकांकी संस्कृति वाले हैं।''[9]

सैफई से प्राप्त मृदभाण्डों में ज्यादातर कुल्हड़ (फूलदान), प्याले एवं रकाबियां हैं। कुछ जारों के मुंह बाहर की ओर मुड़े हुए हैं तथा कुछ गहरे भी हैं। यहां से प्राप्त जार प्यालों तथा थालियों में हत्थे एवं टोंटी लगी हैं। यहाँ से प्राप्त मृदभाण्डों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण हल्के लाल रंग का टुकड़ा है, इस पर हल्की काली–आड़ी–तिरछी रेखाओं से डिजाइन बनाया गया है। ''जो सम्भवतः लेखन कला का दुर्लभ नमूना है।''[10] बहुत से बर्तनों पर खांचित पट्टी, लम्बवत् लघु रेखायें अथवा त्रिकोणीय ताखों की लघु श्रंखलायें लम्बवत् रेखाओं से आवद्ध हैं। बर्तनों में कुछ संतरे के रंग के, कुछ लाल हैं साथ ही कुछ बर्तनों पर चिकना लेप लगा है।

इन सबके अतिरिक्त सैफई से लोढे, चक्कियां, थापियां, मूसल, चैल्सिडनी का लेप, चर्ट–ब्लेड के टुकड़े आदि के साथ ही सैफई एवं लाल किला के उत्खननों से पालतू पशुओं की हड्डियां मिलीं हैं। ''इसी प्रकार सैफई से भी बैल के अस्थि–अवशेष प्राप्त हुए हैं।''[11]जिनमें सैफई से बैल की पसलियां (Ribs of Bos indicus) उल्लेखनीय हैं।

सैफई के उत्खनन से मिट्टी के कुछ ऐसे ढेले प्राप्त हुए हैं, जिन पर जले हुए सरकण्डे के चिन्ह प्राप्त हुए हैं। विभिन्न विद्वानों के इस विषय में मत है कि वे लोग सरकण्डे एवं बांस की सहायता से झोपड़ी बनाकर उस पर मिट्टी थोपकर घर बनाते होंगे। जलप्लावन के कारण इससे सम्बन्धित अन्य साक्ष्य बह गये होंगे।

अधिकांश पुरातत्वविदों का मानना है कि तामृनिधियों तथा गैरिक मृदभाण्डों के निर्माता एक ही संस्कृति के थे। आस्ट्रेलिया के पुरातत्वविद हाइन गेल्दर्न ताम्रनिधियों को भारत में आर्य भाषा–भाषी लोगों के आगमन से सम्बन्धित मानते हैं। गंगाघाटी में सर्वप्रथम सैफई से ही ताम्रनिधियों के साथ गैरिक मृदभाण्ड प्राप्त हुए हैं। जिनमें धरातल से 45 सेमी. गहराई से ओ.सी.पी. के साथ एक मत्स्य भाला उत्खनन में प्राप्त हुआ है। इस विषय में प्रो. बी.बी. लाल तथा डॉ. एल.एम. बहल का मत है कि ''सर्वप्रथम सैफई के उत्खनन से ही यह विवाद सुलझ सका कि ताम्रनिधियों का सम्बन्ध गैरिक मृदभाण्डों से है।''[12]

lUnHkZ xzUFkksa&

1. अग्रवाल, डी.पी. द कॉपर ब्रान्ज एज इन इण्डिया, दिल्ली, 1971, पृ.–11
2. लाल, माखन सेटलमेन्ट हिस्ट्री एण्ड, राइज ऑफ सिविलाइजेशन इन द गंगा–यमुना दोआब, नई दिल्ली, 1984, पृ.–19
3. पाण्डेय, डॉ. राकेश प्रकाश भारतीय पुरातत्व, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृ.–116
4. पाण्डेय, डॉ. जयनारायन पुरातत्व विमर्श, प्रमानिक पब्लिकेशंस, इलाहाबाद, पृ.–244
5. घोष, ए.एन इन्साइक्लोपीडिया ऑफ इण्डियन ऑर्कियोलॉजी, नई दिल्ली, 1989
6. अग्रवाल, डी.पी. एण्ड घोष, ए.रेडियो कार्बन एण्ड इण्डियन ऑर्कियोलॉजी बम्बई, 1973, पृ.–37
7. मण्डल, डी. रेडियो कार्बन डेट्स, न्यूयार्क, 1972
8. व्हीलर, सर मार्टीमर पृथ्वी से पुरातत्व हिन्दी माध्यम कार्यान्वन निदेशालय, दिल्ली, पृ–41–42
9. पाण्डेय, डॉ. जयनारायन पुरातत्व विमर्श, प्रमानिक पब्लिकेशंस, इलाहाबाद, पृ.–460
10. राही, ईश्वरचन्द्र लेखनकला का इतिहास, भाग–2, लखनऊ, 1980, पृ.–72
11. पाण्डेय, डॉ. राकेश प्रकाश भारतीय पुरातत्व, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृ.–117
12. बहल, डॉ. एल.एम. एक्सकेवेशन एट सैफई, पुरातत्व नं0 5, पृ.–12

• • •

36

iqjkrkfRod L=krksa esa eqnzkvksa dk egRo ¼izkphu ekyok ds fo'ks"k lUnHkZ esa½

*Mk- deyk xqIrk

भारत के इतिहास को जानने में सिक्कों का महत्वपूर्ण योगदान है, सिक्कों पर अंकित विभिन्न प्रकार के चिन्ह उस समय की संस्कृति, सभ्यता से हमें परिचित करवाते हैं। सिक्कों ने हमारे प्राचीन एवं मध्यकालीन इतिहास के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला है। सिक्के पर अंकित चित्र से उस समय की धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक स्थिति का पता चलता है। उन पर अंकित चिन्हों से उस समय की उस स्थान की धार्मिक नीति के बारे में भी जानकारी प्राप्त होती है।

पुरातात्विक स्त्रोतों में मुद्रा का महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय इतिहास में विभिन्न वंशों की जानकारी सिक्कों के माध्यम से प्राप्त करने में महत्वपूर्ण रहे हैं। किसी भी राजवंश की आर्थिक, राजनैतिक कलात्मकता की स्थिति को स्पष्ट करने में सिक्कों के विशेष योगदान रहा है। सिक्कों पर अंकित प्रतीक चिन्ह, उस नगर, ग्राम, पहाड़ी, नदी का प्रतिनिधित्व करते थे जहां से वे जारी किये जाते थे।

वैदिक काल में कार्षापण मुद्रा प्रचलित थी जो सोना, चांदी एवं तांबा धातु से बनाये जाते थे। इसके उपरान्त आहत मुद्राएं प्रचलित रहीं, 30वीं सदी ई.पू. में ठलवा सिक्कों का चलन रहा है, शासकों द्वारा चलाई गई मुद्रा शासकीय मुद्रा के रूप में जानी जाती थी, प्राचीन भारत में व्यापारियों एवं स्वर्णकारों द्वारा भी सिक्के जारी किये जाते थे।[1]स्वर्ण मुद्राओं का प्रचलन मुख्यतः प्रथम शताब्दी इसवीं में कुशान राजवंश के समय हुआ।[2] सिक्कों को मुख्यतः देवी–देवताओं जैसे बैठी हुई लक्ष्मी, शिव–उमा की आकृतियां अंकित थी।

---

*ik/;kid ¼vFkZ'kkL=½ 'kk- ljkstuh uk;Mw Luk- dU;k Lo'kklh egkfo|ky;] Hkksiky ¼e-iz-½

विभिन्न राजवंशों ने अपने–अपने सिक्के जारी किये। मुगलकाल में बाबर, हुमायूं एवं अकबर[3] के द्वारा भी सिक्के चलाये गये। ब्रिटिश शासनकाल तक सोने एवं चांदी के सिक्कों का चलन भारत में रहा है।[4] प्रस्तुत लेख के अन्तर्गत सिक्कों के माध्यम से वर्तमान मध्यप्रदेश में स्थित प्राचीन नगरों की राजनैतिक धार्मिक, कलात्मकता, आर्थिक समृद्धि को ज्ञात करने का प्रयास किया गया है। प्राचीन मालवा के प्राचीन भौगोलिक स्थिति को देखें तो ज्ञात होता है कि रामायण, महाभारत, पौराणिक साहित्य तथा अभिलेखों में वर्णित विभिन्न पर्वत एवं धार्मिकता से ओतप्रोत नगर वर्तमान प्राचीन मालवा में है।[5]

मालवा के प्राचीन इतिहास को देखें तो मौर्यकाल के अंतिम चरण में प्राचीन मालवा में कम से कम सात नगर स्थापित हुए–त्रिपुरी, एरण, माहिष्मती, मंजिल विदिशा तथा उज्जयिनी एवं पद्मावती। इन नगर राज्यों द्वारा अपने नामों से अंकित ढले तथा ठप्पे लगे सिक्के चलाये गये। यहां से नगर नाम के सिक्के प्राप्त हुये हैं। विदिशा, एरण, उज्जयिनी, त्रिपुरी, दंगवाड़ा, भाडनेर से आहत मुद्राएं प्राप्त हुई हैं। साथ ही इन स्थानों से मुगलकालीन सिक्कों की भी प्राप्ति हुई है। प्राप्त सिक्कों के माध्यम से यह भी ज्ञात होता है कि ये सिक्के इन नगरों के निवासी किसी व्यापारिक निगम द्वारा एवं यहां के स्थानीय शासकों द्वारा चलाये गये थे। इन सिक्कों की ब्राम्ही लिपि ई.पू. द्वितीय प्रथम की है। ये सिक्के मालवा के विभिन्न स्थानों से प्राप्त हुये हैं। इन सिक्कों से यह पता चलता है कि मालवा का विस्तार कहां तक था। उज्जयिनी, विदिशा, एरण, महिष्मती सिक्कों में समानता दिखलाई देती है, जिससे यह ज्ञात होता है कि इन सभी नगरों का परस्पर सम्बन्ध था। सिक्कों के प्राप्ति स्थलों से मालवा की सीमा कहां तक थी यह जानने में सहायता प्राप्त होती है।[6] यदि हम त्रिपुरी नगर[7] के प्राप्त सिक्कों को देखें तो उन सिक्कों पर 300 ई.पू. की ब्राम्ही लिपि में त्रिपुरी लिखा है तथा ये त्रिपुरी तथा होशंगाबाद जिले के खिडिया नामक स्थान से प्राप्त हुये हैं।

mTtf;uh rFkk ekyok tuin ds fl Dds }kjk Hkkxkfyd] /kkfed ,o dykRedrk dk o.ku&

ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में उज्जयिनी की आहत मुद्राओं पर शिव पहले मानव रूप में अंकित हुये, शिव के हाथ में घट एवं दण्ड है। इन्हीं मुद्राओं के एक प्रकार में शिव के तीन सिर दिखाये गये हैं। कुछ विद्वान इसे महाकाल शिव का अंकन मानते हैं एवं कुछ विद्वान कार्तिकेय के रूप में मानते हैं। सिक्कों के माध्यम से ज्ञात होता है कि प्राचीन समय में उज्जयिनी में शैवमत का अत्यधिक प्रभाव था तथा कार्तिकेय को भी सिक्कों पर अंकित किया गया। शैवमत की लोकप्रियता इससे भी ज्ञात होती है कि विदेशी शासक भी उसके प्रभाव से आकर्षित हुये और उन्होंने अपने सिक्कों पर वृषभ का अंकन किया तथा अपने नाम तथा पुत्रों के नाम भी रूड़ से सम्बन्धित रखने लगे, हुणों ने भी सिक्कों पर 'अयुत वृष' लिखवाया था।[8]

उज्जैन की मुद्राओं पर ब्रज चिन्ह की भी प्राप्ति हुई है। इन सिक्कों को "उज्जैन चिन्ह" कहा जाता है। यह वैदिक चिन्ह है यह स्वास्तिक से अलंकृत है, इस चिन्ह को सातवाहनों द्वारा भी अपनाया गया था।[9]

उज्जैन के सिक्कों पर नदी का अंकन,[10] जो वहां पर क्षिप्रा नदी के अस्तित्व का प्रतीक है। इसी प्रकार विदिशा के सिक्कों पर बेतावती तथा एरण के सिक्कों पर बीना नदी का अंकन किया गया है। उज्जयिनी के सिक्कों पर जो पर्वत का अंकन किया गया है। उसकी पहचान आधुनिक विंध्याचल पर्वत से की जा सकती है।[11] इस प्रकार उज्जयिनी के सिक्कों से वहां की धार्मिकता की स्थिति का पता चलता है।

मालवा के जनपदीय राजाओं की अधिकांश मुद्रायें तांबे से तैयार की गई थी। इस क्षेत्र में चांदी की आहत सिक्कों की संख्या कम रही है। यहां गुप्त युग में सिक्कों के निर्माण के लिये सोना, चांदी तथा तांबा तीनों धातुओं का प्रयोग किया गया। मालवा जनपद के तांबे के सिक्के उज्जैन, विदिशा, एरण, महिष्मती, दशपुर (मन्दसौर), मालवा आदि से प्राप्त हुये हैं, जो कि उस समय के आर्थिक वैभव को दर्शाती है। मालवा जनपद के कुछ सिक्कों पर मनुष्य आकृति में देवताओं का अंकन है। कुछ सिक्कों पर खड़ी हुई स्त्री की मूर्ति है जो सम्भवतः लक्ष्मी की प्रतिमा है। सिक्कों के माध्यम से स्पष्ट है कि उस समय मालवा जनपद में भी शैव एवं वैष्णव धर्म रहा है, कुछ सिक्कों पर दण्डधारी शिव, कहीं तीन सिर वाले शिव तथा कुछ सिक्कों पर कार्तिकेय को भी दिखाया गया है। अनेक सिक्कों पर त्रिशूल चिन्ह भी दिखाये गये हैं। भारतीय मूर्ति विज्ञान में शिव की कल्याण सुन्दर प्रतिमाओं का विशेष महत्व है। मालवा जनपद में भी इसी प्रकार का अंकन मुद्राओं में दिखाई देता है।[12]

मालवा जनपद क्षेत्रों में कारीगरों की कलात्मक रूचि का ज्ञान सिक्कों को देखकर होता है। सिक्कों पर कारीगरों ने अपनी कला प्रियता की छाप छोड़ी है। बहुत से सिक्कों पर लक्ष्मी कमल के ऊपर बैठी हुई सुन्दरता से दिखाई गई है। गजलक्ष्मी का अंकन भी सिक्कों पर पाया गया है, जिसमें हाथियों द्वारा लक्ष्मी के अभिषेक का अंकन बहुत ही कलात्मक है।

fofn'kk ,o ,j.k rFkk inekorh[13] d fIDd }kjk 'kklu] /kkfeldrk rFkk idfr dk fp=.k&

विदिशा एवं एरण[14] से भी आहत तथा ठप्पे द्वारा निर्मित सिक्के प्राप्त हुए हैं। एरण में प्राप्त सिक्के तांबे के आहत सिक्के हैं। कुछ सिक्कों पर प्रतीक बिल्कुल नये ढंग के हैं जो अन्यत्र नहीं मिलते। एक चिन्ह त्रिशूल से सामंजस्य स्थापित करता है। दूसरे चिन्ह में दो अर्द्ध आयताकार चिन्ह हैं। यहां प्राप्त मुद्रायें चांदी एवं तांबे की रही है। नागशासक, शक, क्षत्रप तथा गुप्त हूण शासकों द्वारा भी इसी प्रकार की मुद्रायें चलाई गई।

आहत मुद्राओं के चिन्ह मुख्यतः प्रकृति से लिये हुये होने के कारण मयूर, नदी, पर्वत, मछली युक्त नदी, गरूड़, बैल, हाथी, सूर्य, अश्व, कमल को प्रदर्शित करते हैं। साथ ही वैदिक वृक्ष जो कि वैदिक संस्कृति में अनेक देवताओं का निवास स्थान माना जाता है। विदिशा के नगर राज्य के सिक्कों पर ब्राम्ही अक्षरों में वेदिस् अथवा वेदद्स लेख भी उत्कीर्ण किये गये हैं।

inekorh] c?ky[k.M ds fIDdks }kjk /kkfeZdrk] Hkkxksfydrk dk fp=.k&

पद्मावती ईसा की प्रथम चार पाँच शताब्दियों तक हिन्दू संस्कृति का एक प्रमुख केन्द्र रहा है। यहां नागवंशी राजाओं ने बहुत संख्या में तांबे के सिक्के चलवाये तथा कुछ नागराजाओं की मुद्रा पर चक्र के चिन्ह मिलते हैं। यह चक्र विष्णु के सुदर्शन चक्र का प्रतीक है। यह सिक्के उस की धार्मिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को दर्शाते हैं। साथ नागवंशी राजाओं के सिक्कों पर मयूर, नदी तथा सिंह आदि के लान्छन इन्हें शिव के परमभक्त के रूप में घोषित करते हैं।

बघेलखण्ड कौशम्बी के मघ राजाओं के कई अभिलेख बांधोगढ़ (जिला–रीवा) से प्राप्त हुये हैं। कौशम्बी पर भी माद्यों का शासन रहा है। उनके सिक्कों के पृष्ठ भाग में वृषभ अंकन प्रमुख रूप से मिलता है और ये सिक्के भी उस समय की धार्मिक स्थिति का वर्णन करते है।[15]

'kgMksy] gjnk] gks'kaxkckn ds fIDdks ds ek/;e ls mIs le; dh 'kklu O;oLFkk dh fLFkfr&

शहडोल में कुषाण शासकों के 757 सिक्के प्राप्त हुये थे। इसमें बीम केंडफिसेस के भी 44 सिक्के मिले थे। शहडोल से प्राप्त सिक्कों में 324 सिक्के कनिष्क प्रथम के मिले थे। हरदा एवं होशंगाबाद में भी कुषाणकालीन दो स्वर्ण सिक्के, जिनमें एक हुविष्क का चौथाई स्टेटर है तथा दूसरा कनिष्क द्वितीय अथवा तृतीय स्टेटर है, स्वर्ण मुद्रायें चलाये जाना आर्थिक समृद्धि को दर्शाती है।[16] इस प्रकार सिक्कों के माध्यम से प्राचीन समय की राजनैतिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक, धार्मिक, आर्थिक समृद्धि की स्थिति का आकलन किया जा सकता है।

विशेष स्थान से प्राप्त सिक्कों के माध्यम से उस समय की विशेष स्थिति को ज्ञात किया जा सकता है।

lUnHkZ xzUFk%&

1. आर सी मजूमदार 1977 एनश्यिन्ट इंडिया मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशन पेज नं 49 गुप्ता 'प्राचीन भारतीय मुद्रायें' (1989)
2. ऐलन जे. एवं एस.एम. स्र्टन 'एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका'
3. इरफान हबीब 'दि एग्रेरेरियम सिस्टम ऑफ मुगल इंडिया' (1556–1707) ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस नई दिल्ली पेज नं. 432–435, 442
4. ऐलन जे. एवं एस.एम. स्र्टन उपरोक्त
5. प्राचीन मालवा के अर्न्तगत अवन्ति तथा चेदि महाजनपद थे जो कि धार्मिक तथा आर्थिक रूप से सम्पन्न नगर थे ।
6. के.डी वाजपेयी इंडियन न्यू मेसमेटिक स्टडीज अध्याय 4 हिस्टी ऑफ क्वाइन्स ऑफ उज्जैन उपरोक्त पेज नं. 16 शैफाली भट्टाचार्य –"मालवा के जनपदीय सिक्के", आयुक्त पुरातत्व एवं संग्रहालय मध्यप्रदेश–1989
7. ए.एम.शास्त्री'त्रिपुरी' (भोपाल 1971) पेज नं. 29–32 एवं शैफाली भट्टाचार्य –"मालवा के जनपदीय सिक्के", आयुक्त पुरातत्व एवं संग्रहालय मध्यप्रदेश–1989
8. देवेन्द्र हाडा 'डिवाइनिरीज ऑन उज्जैन क्वाइन्स' आई.सी.एस.एन.एल., 2013, पेज नं.–51 एवं के. डी वाजपेयी इंडियन न्यू मेसमेटिक स्टडीज अध्याय 4 हिस्टी ऑफ क्वाइन्स ऑफ उज्जैन उपरोक्त पेज नं. 16.17.18
9. उपरोक्त
10. उपरोक्त
11. उपरोक्त
12 उपरोक्त
13 के.डी वाजपेयी इंडियन न्यू मेसमेटिक स्टडीज अध्याय 5 'अर्ली सेन्ट्रल इंडियन क्वाइन्स एज ए सोर्स ऑफ इकानॉमिक हिस्ट्री, पेज नं. 14–15 एवं जे.एन.एस.आई वॉल्यूम–25, पेज नं. 17 18 19 20 21 वॉल्यूम–32 पेज नं. 77 78 एवं न्यू लाइट ऑन दि हिस्ट्री ऑफ ऐरन जे यू पी ए च एस वॉल्यूम–18 1960 पेज 47–52
14. के.डी., वाजपेयी 'सागर थ्रु दि ऐजेज' (1969) न्यू देहली, पेज नं. 28–30
15. अमिता वाजपेयी, 'मध्यप्रदेश में नागवंशीय सिक्के' 1981
16. आनन्द शंकर सिंह, 'भारत में प्राचीन मुद्रायें' 2004

• • •

37

t|u i|jk.kk e| okf.kT; 0k 0;kikj

*vk'kh"k vkuUn

किसी भी वस्तु का उपयोग करने से पूर्व उसे संस्कारित करने से वस्तु रूपान्तरित हो जाती है और उसकी उपयोगिता बढ़ जाती है। किसी भी वस्तु में उपयोगिता का सृजन करने को ही उत्पादन करते हैं। आलोचित पुराणों में भी उत्पादन का ज़िक्र आता है। गन्ने के रस से गुड़ बनाया जाता था। स्वर्ण–रजत को गहनों में ढाल कर उन्हें उपयोगी और कलात्मक बनाया जाता था। गेहूँ के दानों को सीधा नहीं खाया जाता था अपितु उन्हें पीसकर, उनकी रोटी या व्यंजन बना कर खाया जाता था। इस प्रक्रिया में श्रम और कौशल के अलावा अन्य अनेक उत्पादन के साधनों की अवश्यकता भी होती थी। कृषि, पशुपालन, उद्यानिकी, वानिकी, खनन आदि उद्योग प्रकृति पर आधारित होते हैं। उनके उत्पादों को सीधे या मामूली श्रम और प्रक्रिया के बाद काम में लिया जा सकता है। 18वीं शताब्दी में हुई औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप उद्योग धन्धों का विकास तीव्र गति से हुआ जिनमें यंत्रों संयंत्रों और मशीनों का उपयोग मुख्य रूप से होता है। समीक्षित पुराणो में व्यापारी के लिए वणिक्[1] और व्यापार के लिए वणिज्[2] शब्द प्रयुक्त हुआ है। उस समय भारत के उद्योग–धन्धें काफी विकसित अवस्था में थे।

f'kYi 0;olk; आलोचित पुराणों के काल में विभिन्न प्रकार के शिल्पी तथा कर्मकार अपने–अपने श्रेणी प्रधानों के आधिपत्य से जीविकोपार्जन करते थे। कृषि–ग्रामों के समान ही शिल्प व्यवसाय भी विकेन्द्रीकरण की नीति से प्रभावित हो चुके थे। सातवीं–आठवीं शताब्दी के समुद्रगुप्त के नाम से जाली तौर पर जारी किए गए दो ताम्रपत्रों से विदित होता है कि इन गाँवों में दूसरे किसी गाँव के किसानों तथा शिल्पियों को बसाने पर प्रतिबन्ध लगा हुआ था।[3] 'अग्रहार' नामक ग्राम राजाओं द्वारा ब्राह्मणों को दान में दिए गए वे ग्राम थे जिनका संरक्षण राजा के अधीन ही होता था।[4]

0;kikj ,o okf.kT; .क्रय–विक्रय को व्यापार और इन गतिविधियों में संलग्न व्यक्ति को व्यापारी कहा जाता है। व्यापार करना वाणिज्य है। कौटिल्य अर्थशास्त्र[5] में

***fjlp Ldkyj t-t-Vh- fo'ofo|ky;] >kW>u] jktLFkku**

भी वार्ता की व्याख्या कृषि, पशुपालन और व्यापार के रूप में की गयी है। धान्य, पशु, हिरण्य, ताम्रादि खनिज पदार्थ की उत्पत्ति का साधन वार्ता है। इसी कारण आदिपुराण[6] में वाणिज्य व्यवसाय के साथ पशुपालन और पशु व्यापार को महत्त्व दिया गया है। आलोचित पुराणों में कुछ व्यापारियों के उल्लेख भी मिलते है। अयोध्या नगरी में एक सुरेन्द्र दत्त नामक सेठ रहता था जो 32 करोड़ दीनारों का धनी था[7] तथा वह व्यापार करने के लिए बाहर चला गया।[8] वह दीनार दान में देता था।[9] व्यापारी दो प्रकार के बताये गये हैं – 1. स्थानीय व्यापारी 2. सार्थवाह[10]

हमारे इस कथन की पुष्टि मेरूकदत्त नामक सेठ के आख्यान से होती है। यह सेठ व्यापारी, समुदायसंघ का अधिपति था और इसी के परामर्श से संघ का संचालन होता था।[11] दुष्कर और विकट राहों पर दो–दो सार्थवाह भी साथ–साथ चलते थे। पाँच प्रकार के सार्थ बताये गये हैं[12] :

1. भण्डी : इसमें माल ढोने के लिए शटक आदि यान होते थे।
2. बहलिका : इसमें भारवाही पशु ऊँट, घोड़े, बैल, खच्चर आदि होते थे।
3. भारवह : इस प्रकार के सार्थ में यात्री अपना भार स्वयं ढोते थे।
4. औदारिका : इसमें श्रमिकों का साथ होता था, जो उनकी आजीविका के लिए घूमते थे।
5. कार्याटिका : इसमें भिक्षुओं और साधु–साध्वियों का सार्थ होता था।

प्रमुख व्यापारिक केन्द्र

अंग–अंग देश की राजधानी चम्पापुरी थी। प्राचीन भारत में चम्पा एक अत्यन्त सुन्दर और समृद्ध नगर था।[13] चम्पा के व्यापारी अपना माल लेकर मिथिला, अहिच्छत्रा, पिहुंड आदि अनेक स्थानों में व्यापार के लिए जाते थे।[14]

कलिंग –कलिंग की राजधानी कंचनपुर (भुवनेश्वर) थी। यह जनपद एक व्यापारिक केन्द्र था और यहाँ के व्यापारी लंका तक जाते थे।[15]

पुष्कलावती–यह देश धनधान्य से परिपूर्ण था।[16] यहाँ के निवासी आरामपूर्वक जीवन व्यतीत करते थे।

प्रभाकरी–यह नगर समस्त सम्पदाओं का स्थान था।[17] सम्पदाओं की प्रचूरता के कारण इस नगर के नागरिक सम्पन्न थे।

मगध–मगध जैनधर्म की प्रवृत्तियों का प्रधान केन्द्र था। राजगृह व्यापारिक केन्द्र था। यहाँ धान्य की खेती सदा होती रहती थी।

रत्नसंचय–यह नगर उत्तम रत्नों का निवास था।[18] यहाँ के लोग रत्नों का व्यापार करते थे।

lqjk"V –सुराष्ट्र जनपद व्यापार का भी केन्द्र था और यहाँ दूर–दूर के व्यापारी माल खरीदने के लिए आते थे।

'kwjlsu – शूरसेन जनपद की स्थिति मथुरा के आस–पास थी। मथुरा, गोकुल, वृन्दावन, आगरा आदि इस जनपद में सम्मिलित थे।

fonsg–इसकी राजधानी मिथिला थी। मिथिला का जैन साहित्य में बड़ा महत्त्व है। 19 वें तीर्थंकर मल्लिनाथ और 21 वें तीर्थंकर नमिनाथ की चरण–रज से यह नगरी पावन हुई।

O;kikfj;ksa ij fu;a=.k आचार्य सोमदेव ने भ्रष्ट व्यापारियों पर नियन्त्रण सम्बंधी निर्देश राजा को दिए हैं। उनका कथन है कि राजा को ऐसे व्यापारियों का परीक्षण करते रहना चाहिए जो कीमती वस्तुओं में मिलावट करते हैं, नाप तौल के दोहरे साधनों का प्रयोग करते हैं जैसे नाप–तौल के बाटों में कमी कर देना आदि। व्यापारियों के इस बर्ताव से जनता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। व्यापार में ईमानदारी परम् आवश्यक तत्व है। जहाँ के व्यापारी कम मूल्य देकर पदार्थ खरीदते हैं तथा अधिक मूल्य पर बेचते हैं वहाँ की जनता गरीब हो जाती है।

J.kh lxBu विभिन्न उद्योगों के संगठित समुदाय थे जिन्हें श्रेणी कहा जाता था। अधिकांशतया एक ही स्थान पर रहने वाले और समान व्यवसाय में लगे हुए व्यक्ति श्रेणियों में संगठित होते थे। श्रेणियाँ जुलाहों, मालियों, कुम्भकार, पनवाड़ी, बर्तन बनाने वाले, शिल्पकार, भवननिर्माण करने वाले लुहार, सुनार आदि सभी व्यवसायों की थी। ये श्रेणियाँ अपने सदस्यों को विभिन्न सुविधाएँ पहुँचाने के अतिरिक्त उनके लिये बैंकों का कार्य भी करती थी अर्थात् उनका धन जमा करती थी और सदस्यों को ब्याज पर कर्ज भी देती थी। इन श्रेणियों का समाज में पर्याप्त प्रभाव होता था नगर में विभिन्न व्यवसाय करने वाले विभिन्न भागों में रहते थे। व्यापार करने वाले व्यक्ति भी श्रेणियों में संगठित होते थे और उनके प्रधान को श्रेष्ठी पुकारते थे।[19] चोल साम्राज्य की शक्ति के विकास होने पर दक्षिण–भारत के विदेशी व्यापार की भी उन्नति हुई।

lUnHkZ xzUFk

1. आचार्य जिनसेन द्वितीय : हरिवंश पुराण, सम्पादक व अनुवादक – डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य, प्रकाशक – भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2006, 27/24
2. आचार्य जिनसेन द्वितीय : हरिवंश पुराण, सम्पादक व अनुवादक – डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य, प्रकाशक – भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2006, 21/75
3. शर्मा, रामशरण : भारतीय सामन्तवाद, प्रकाशक – राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 8 नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली, 1973, पृ. 66

4. शर्मा, रामशरण : भारतीय सामन्तवाद, प्रकाशक – राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 8 नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली, 1973, पृ. 66
5. कौटिलीय : अर्थशास्त्र, व्याख्याकार – वाचस्पति गैरोला, प्रकाशक – चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, वि. संवत् 2019, पृ. 15
6. आचार्य जिनसेन : आदिपुराण, सम्पादक व अनुवादक – डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य, प्रकाशक –भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2006, 42/150–171
7. आचार्य जिनसेन द्वितीय : हरिवंश पुराण, सम्पादक व अनुवादक –डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य, प्रकाशक – भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2006, 18/97–98
8. आचार्य जिनसेन द्वितीय : हरिवंश पुराण, सम्पादक व अनुवादक –डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य, प्रकाशक – भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2006, 18/99
9. आचार्य गुणभद्र : उत्तरपुराण, संपादक व अनुवादक – डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य, प्रकाशक–भारतीय ज्ञानपीठ, नई–दिल्ली, 2006, 62/195
10. आचार्य मधुकर मुनि जी : ज्ञाताधर्मकथांग, प्रकाशक – श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर (राजस्थान), 1981, 15/6
11. आचार्य जिनसेन : आदिपुराण, सम्पादक व अनुवादक – डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य, प्रकाशक – भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2006, 46/112–142
12. धींग, डॉ. दिलीप : जैन आगमों का अर्थशास्त्रीय अध्ययन, प्रकाशक – प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, 2007, पृ. 146
13. आचार्य मधुकर मुनि जी : औपपातिक सूत्र, प्रकाशक – श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर (राज.), 1992, 1/50
14. आचार्य हस्तीमल जी महाराज : उत्तराध्ययन सूत्र, प्रकाशक – सम्यक् ज्ञान प्रचारक मंडल, जयपुर, 2000, 21/2
15. शास्त्री, डॉ. नेमिचन्द्र : आदिपुराण में प्रतिपादित भारत, प्रकाशक – श्री गणेशप्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला, 1/128, डुमरावबाग, अस्सी, वाराणसी, 1968, पृ 51
16. महाकवि असग : शान्तिनाथ पुराण, सम्पादक – डॉ. हीरालाल जैन, अनुवादक – डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य, प्रकाशक – जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर, 1977, 8/71, 11/2
17. महाकवि असग : शान्तिनाथ पुराण, सम्पादक – डॉ. हीरालाल जैन, अनुवादक – डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य, प्रकाशक – जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर, 1977, 3/44
18. महाकवि असग : शान्तिनाथ पुराण, सम्पादक – डॉ. हीरालाल जैन, अनुवादक – डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य, प्रकाशक – जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर, 1977, 9/9
19. शर्मा, एल.पी. : प्राचीन भारत, प्रकाशक – लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2010, पृ. 349

●●●

38

[ktjkgk dh efr;k e fNik llre ifVVdkvk dk jgL;

¼11&12oh 'krkCnh d fo'k"k lnHk e½

*Mk- lnhi JhokLro

प्रतिहार साम्राज्य के पतन के पश्चात् बुन्देलखण्ड की भूमि में चन्देल वंश के स्वतंत्र राजनीतिक इतिहास का आरंभ हुआ। '' बुन्देलखण्ड का प्राचीन नाम जेजाकभुक्ति है।''[1] नन्नुक का पौत्र जेजा अथवा जयशक्ति था जिसके नाम पर चंदेलों के राज्य का नाम जेजाकभुक्ति पड़ा।[2] स्मिथ का मत है कि '' चंदेल, भेंरों अथवा गोंड जाति के हैं।[3] इस वंश की स्थापना 831 ईस्वी के लगभग नन्नुक नामक व्यक्ति ने की थी। चंदेल वंश के इतिहास के सर्वाधिक प्रामाणिक साधनों में खजुराहो से प्राप्त हुये दो लेखों का सर्वाधिक महत्व है – 1. खजुराहो (छतरपुर, म. प्र.) के विक्रम संवत् 1011 (954 ईस्वी) 2. विक्रम संवत् 1059 अर्थात् 1002 ईस्वी के लेख।

इस वंश के महान शक्तिशाली शासकों में धंग तथा विद्याधर चंदेल का नाम उल्लेखनीय है जो चंदेल शक्ति के आधार स्तम्भ तथा साम्राज्य के मुख्य निर्माता थे। विद्याधर के शासनकाल (1019–1029ईस्वी) की बड़ी उपलब्धि कन्नौज के शासक राज्यपाल का वध करना था। यह एक विवादित प्रश्न है कि विद्याधर ने राज्यपाल की हत्या शासक रहते या अपने पिता गण्ड के शासन काल में की। '' विद्याधर ने अपने पिता गण्ड के काल में सेनापति के रूप में राज्यपाल का वध किया था, न कि राजा होने के बाद। इस मत के पोषक लोग मुसलमानों के 'नंद' की पहचान 'गण्ड' से करते हैं।''[4] इतना ही नहीं विद्याधर ने मालवा के परमार शासक भोज तथा कलचुरि शासक गांगेयदेव को भी पराजित कर अपनी अधीनता में कर लिया था। '' चंदेलवंश के एक अभिलेख से पता चलता है कि उपर्युक्त दोनों ही नरेश शिष्य के समान डरकर विद्याधर की पूजा किया करते थे। '' अभिलेख में इसीलिए संस्कृत में एक श्लोक मिलता है।

***vfrfFk fo}ku bfrgkl foHkkx egkjk.kk irki 'kkl- Lukr- egkfo|ky; xkMjokjk] ftyk&ujflgiqj] ¼e-i½**

विहितकान्याकुब्जभूपालभंगं समरगुरू उपास्यत।
प्रोढ़भीत्तल्पभाजं सहकलचुरिः चन्द्रः शिष्यवत् भोजदेवः।। [5]

विद्याधर की मृत्यु के पश्चात् चंदेल वंश की शक्ति का क्रमिक ह्रास प्रारम्भ हुआ लेकिन ऐतिहासिक व धार्मिक रूप में वह आज भी जीवंत है। बुंदेलखंड में खजुराहो वह नाम है, जिसके स्मारक अपनी वास्तुकला के वैशिष्ट्य के कारण एवं समृद्व शिल्पकला के लिये न केवल साधारण आकस्मिक दर्शकों का ध्यान आकर्शित करता है। वरन् वह कला के क्षेत्र के गंभीर विद्ववानों को भी आकर्षित करता है। मध्ययुगीन भारत की कला एवं वास्तुविज्ञान की कला, इतिहास, धर्म व संस्कृति पर खजुराहो प्रकाश डालता है। यद्यपि खजुराहो की शिल्प कला मिथुन मूर्तियों के रूप में है परंतु इनका विश्लेषण तात्कालीन परिदृश्यों की प्रकृति से ही किया जा सकता है। खजुराहो की शिल्पकला भौतिकवादी जीवन का दिग्दर्शन कराती है।

खजुराहो बुंदेलखंड के चंदेल राजाओं की राजधानी रही है। यह 9वीं से 12वीं सदी की सांस्कृतिक गतिविधियों व उन्नत कला का प्रमुख केन्द्र था। वास्तव में खजुराहो इन्डो–आर्यन वास्तुकला का अनूठा संगम है क्योंकि एक ही स्थान पर मंदिरों का निर्माण अन्यत्र कहीं नहीं है। '' 950 से 1050 ईस्वी के बीच चंदेल शासकों द्वारा बनाये गये 85 मंदिरों में से केवल 32 ही मंदिर बचे है।''[6] खजुराहो के प्रमुख दर्शनीय स्थलों (मंदिरों) को तीन भौगोलिक श्रेणियों में बाँटा जा सकता है।[7] 1. पश्चिम् मंदिर समूह, 2. पूर्वी मंदिर समूह 3. दक्षिणी मंदिर समूह। मंदिरों की इस श्रृंखला में एक महत्वपूर्ण उल्लेखनीय विशेषता यह है कि पूरे खजुराहो में पाई जाने वाली लगभग अनेक प्रतिमाओं या मूर्तियों में सप्तमातृका पट्ट उत्कीर्ण हैं। सप्तमातृका शाब्दिक अर्थ है सप्तमाताएँ या सात देवियाँ या सात सरंक्षिका। खजुराहो के पुरातत्व संग्रहालय में सुरक्षित यह सप्तमातृका पट्ट खजुराहो में ही प्राप्त हुआ है। इसकी विशेषता यह है कि गणपति, बीरभद्र, सहित सात माताएँ नृत्य मुद्रा में गोद में बालक (शिशु) को लिये नृत्य कर रही है। इन माताओं को आभूषण से सुसज्जित किया गया है।

पट्ट के दक्षिणी छोर पर द्विभंग मुद्रा में प्रदर्शित गणेश द्विभुजी है। इसी मुद्रा में बाँए छोर पर वीणा लिये बीरभद्र स्थित है। बीरभद्र और गणपति के मध्य बायी और से क्रमानुसार ब्राह्मी,माहेश्वरी,कौमारी,वैष्णवी, वाराही,इन्द्राणी, और चामुण्डा है। ब्राह्मी मातृका की दायीं भुजा वरद मुद्रा में तथा बायी भुजा में कमण्डल है। ये मातृकाऐं मुकुट व आभूषणों से दर्शित है। जटाशंकर प्रिये शिवा की दाहिनी भुजा वरद मुद्रा तथा बांयी भुजा में शिशु को गोद में बिठाले हुये है। यही स्थिति वैष्णवी माता की है। कौमारी की दाहिनी भुजा वरद मुद्रा में तथा बांयी भुजा में शक्ति है। वाराही माता के बांये हाथ में शस्त्र, दाहिने हाथ में कपाल स्थित है। सबसे सुंदर आकृति यह है कि वज्र व शिशु दाहिने हाथ में है और माँ अपने बच्चे को दूध पिला रही है। सम्भवतः मेरी शोध की दृष्टि से ममतामयी माँ का बच्चे को दूध पिलाना पहला उदाहरण है, मूर्ति रूप में ये सिर्फ मेरा विचार है।

चामुण्डा देवी का बांया हाथ आश्चर्यचकित या विस्मयकारी मुद्रा में, दाहिने हाथ में खड्ग हैं। माँ के सिर पर मुकुट में एक मानव खोपड़ी का चित्र मिलता है।ऐसा लगता है इस मूर्ति का निर्माण विधि–विधान द्वारा किया गया है। चंदेलकालीन यह प्रतिमा लगभग 11–12वी शताब्दी की कलात्मकता एवं वास्तुकला व स्थापत्य का बेजोड़ नमूना है।

स्कन्द पुराण में अनेक मातृकाओं के नाम दिये है जैंसे बुद्धि, ह्वी,पुष्टि, लज्जा, तुष्टि, शांति, क्षमा, स्प्हा, श्रद्धा, चेतना, मन्त्रशक्ति, उत्साहशक्ति, तथा प्रभुशक्ति। इन सब रूपों में परमेश्वरी शक्ति ही सर्वव्यापक है।[8]

इसी प्रकार मार्कड्ेय पुराण में रक्तदन्तिका, अयोनिजा, शताक्षी,शाकम्भरी, दुर्गादेवी, भीमादेवी, भ्रामरी[9] नाम से सप्तमाताओं का वर्णन है जिसमें संसार जब–जब दानवीबाधा या विपत्ति उपस्थित होगी तब–तब अवतार लेकर में शत्रुओं का संहार करूंगी। खजुराहो में ही प्राप्त महिषमर्दिनी आदि छः देवियों के नाम भी मिलते है– महिषमर्दिनी दुर्गा, काली, नील सरस्वती, उग्रतारा, एकजटा, त्रिपुर सुंदरी,[10] इसी प्रकार देवी भागवत पुराण,वराह पुराण, लिंग पुराण, महाभारत,मत्सय, अग्नि आदि पुराणों में मातृकाओं की संख्या 8–10 बताई गई है। दस महाविद्याओं का उल्लेख भी मिलता है जिनमें छिनमस्ता, धूमावती, काली, कमला, तारा, बंगलामुखी, त्रिपुरसुंदरी, मांतगी, षोडशी, भुवनेश्वरी।[11] हड़प्पा संस्कृति मे भी मातृ पूजन का प्रचलन था।[12] ऋग्वैदिक काल में भी देवी या मातृका पूजन का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद, आरण्यक ग्रंथ, गुहसूत्र, दुर्गासप्तशती में भी देवी उपासना का उल्लेख मिलता है। ब्रहा, विष्णु, महेश, कार्तिकेय, वराह, इन्द्र, और यम की शक्ति के रूप में मातृ पूजन की अर्चना–पूजा सृष्टि के आरंभ से ही रही है। कहीं–कहीं मातृकाओं की संख्या 8 भी है।[13] महाभारत में भी देवी पूजन का उल्लेख प्राप्त होता है।[14] कुमार गुप्त के गंगाधर शिलालेख,[15] एवं स्कन्ध में एक अन्य अभिलेख[16] में देवियों की स्तुति व वंदना की गई है। इस प्रकार खजुराहो की सप्तमातृ का पट्ट न सिर्फ ऐतिहासिक दृष्टिकोण से बल्कि धार्मिक दृष्टिकोण से अत्यंत महत्वपूर्ण है।

इस प्रकार चंदेल राज्य के मुख्य नगर खजुराहो, कालंजर और महोबा थे। विन्सेंट स्मिथ लिखते हैं – '' इनमें से पहला नगर अपने सुंदर और विशाल मंदिरों के साथ इस राज्य की धार्मिक, दूसरा अपने दुर्ग के साथ इसकी सैनिक और तीसरा राजप्रसाद के साथ इसकी नागरिक राजधानी थी।[17] महोबा के निकट 'कीरतसागर' नामक सुंदर झील को कीर्ति वर्मा ने बनवाया था।[18] इस प्रकार महोबा में मदन सागर, मदन बर्मन, की कीर्ति का प्रमाण है।[19] इस प्रकार चंदेलों ने बुंदेलखंड को मंदिरों तथा पक्की झीलों से प्रभूत सुंदर कर दिया। मध्यप्रदेश का पर्यटन बगैर खजराहो के अपूर्ण है।

lnHk xFk

1. के. सी. श्रीवास्तव – प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति यूनाइटेड बुक डिपो, 1995 इलाहबाद (उ. प्र.) पृ. क्र. 591
2. डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी – ' प्राचीन भारत का इतिहास ' मोतीलाल बनारसीदास, 1971, 1977, 1982 बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली – 7, पृ. क्र. – 267
3. ओमप्रकाश – 'प्राचीन भारत का इतिहास' विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा. लिमिटेड, 1971, 1975 दरियागंज–दिल्ली, पृ. क्र. 329
4. केशवचंद्र मिश्र – ' चंदेल और उनका काल ' पृ. क्र. 85 – 99 एवं अयोध्या प्रसाद पाण्डेय – चंदेल कालीन बुंदेलखंड का इतिहास ' पृ. क्र. 50 –58
5. के. सी. श्रीवास्तव ' प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति यूनाइटेड बुक डिपो, 1995 इलाहबाद (उ. प्र.) ' पृ. क्र. 595
6. जगमोहन नेगी – ' संपूर्ण भारत के सांस्कृतिक पर्यटन स्थल ' तक्षशिला प्रकाशन, 2002 दिल्ली, पृ. क्र. 198
7. प्रकाशनारायण नाराणी – ' भारतीय कला के विविध आयाम ' महेश बुक डिपो, 2007 जयपुर (राजस्थान) पृ. क्र. 20
8. गीता प्रेस गोरखपुर – ' संक्षिप्त स्कन्द पुराण ' कोड नं. –279, महेश्वर खण्ड – कुमारिका खण्ड पृ. क्र. 192 – 193
9. गीता प्रेस गोरखपुर – ' संक्षिप्त मार्कण्डेय पुराण कोड नं. – 539, एकादश अध्याय, पृ. क्र. 539
10. गीता प्रेस गोरखपुर – ' शक्ति अंक ' पृ. क्र. 718
11. गीता प्रेस गोरखपुर – ' शक्ति अंक ' पृ. क्र. 109 – 132
12. मैके– ' अर्ली इंडियन सिविलाइजेशन ' पृ. क्र. 58
13. जे. एन. बनर्जी – ' डेवलपमेन्ट ऑफ द हिन्दु आइकनोग्राफी ' पृ. क्र. – 503
14. ए गेटे – ' गणेश ' पृ. क्र. – 11
15. कार्पस इन्स इंडि. जिल्द 111, पृ. क्र. – 73
16. कार्पस इन्स इंडि. जिल्द 111, पृ. क्र. 49
17. डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी – '' प्राचीन भारत का इतिहास ' मोतीलाल बनारसीदास, 1971, 1977, 1982 बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली – 7, ' पृ. क्र. 270
18. वी. डी. महाजन – ' प्राचीन भारत का इतिहास ' विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा. लिमिटेड, 1975 दरियागंज– दिल्ली, पृ. क्र. – 631
19. डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी '" प्राचीन भारत का इतिहास ' मोतीलाल बनारसीदास, 1971, 1977, 1982 बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली – 7 ' पृ. क्र. 270

● ● ●

39

fHk.M ftys dk izfl) tSu vfr'k; {ks=

*Mk- lqjsUnz dqekj foey

प्राचीन समय से ही भिण्ड में जैन संस्कृति फली फूली है भिण्ड में कई प्रसिद्ध जैन मंदिर एवं तीर्थ क्षेत्र स्थित है। जैन धर्म में आत्म जागृति के साधन के रूप में तीर्थस्थलों के विषेश महत्व है। जैन मान्यतानुसार तीर्थो को तीन भागों में बांटा गया है। प्रथम निर्वाण क्षेत्र जिसे सिद्ध क्षेत्र भी कहा जाता है। निर्वाण क्षेत्र उन क्षेत्रों को कहा जाता है, जहां तीर्थकरों या किसी तपस्वी वीतरागी जैन मुनि को निर्वाण प्राप्त हुआ हो । जैन धर्म में ऐसी मान्यता है कि जिस स्थान पर निर्वाण प्राप्त होता है, उस स्थान पर इन्द्र और अन्य देवता पूजा के लिये आते हैं। ऐसे तीर्थ स्थानों में निर्वाण प्राप्त करने वाले तीर्थकार या जैन तपस्वी के चरण चिन्ह स्थापित कर दिये जाते हैं। द्वितीय कल्याण क्षेत्र, यह उन स्थानों को कहा जाता है जहां किसी तीर्थकर का गर्भ, जन्म, अभिनिष्क्रमण या केवल्य ज्ञान प्राप्त हुआ हो तथा अतिशय क्षेत्र उन स्थानों को कहा जाता है जहां आश्चर्यजनक चमत्कार होता है। सामान्यतः जो तीर्थ स्थान निर्वाण क्षेत्र या कल्याण क्षेत्र नहीं है उन्हें अतिशय क्षेत्र कहा जाता है।[1] प्रत्येक जैन तीर्थ क्षेत्र अपने सम्पूर्ण रूप में किसी न किसी तीर्थ से संबद्ध रहता है। इसी परम्परा का निर्वहन भिण्ड स्थित तीन अतिशय क्षेत्र में किया है जिनकी धार्मिक महत्ता प्रमाणित हो चुकी है।

cjgh ¼cYyHkiqj½ इसका सम्पूर्ण नाम श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र बरही (बल्लभपुर) है। यह नाम भी अन्य प्राचीन पौराणिक क्षेत्र की भाशा की दृष्टि से अपभृंशिक नामों का एक उदाहरण हैं। बल्लभ (बरही) म.प्र. के उत्तरी क्षेत्र में उत्तरप्रदेश की सीमा को छूता हुआ चम्बल नदी के किनारे भिण्ड इटावा मार्ग पर स्थित है। पुरातात्विक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से यह क्षेत्र अति महत्वपूर्ण है पुरातात्वीय शोध में प्राचीन भवन 1000

***vfrfFk O;k[;krk 'kkldh; oSnk lgk; LukrdksRrj egkfo|ky;] Mcjk Xokfy;j ¼e-iz-½**

वर्ष पुराना है। इस अतिशय क्षेत्र पर प्राप्त जिन प्रतिमाऐं 10 वीं व 11वीं सदी की है। इस प्रकार यह न केवल धार्मिक क्षेत्र है, बल्कि भारत की भव्य ऐतिहासिक धरोहर है। यहां के जैन धर्मावलंबियों के अनुसार तीर्थकर श्री अजितनाथ भगवान का भव्य जिनालय चैत्र कृष्णा द्वितीय गुरूवार वीर संवत् 1520 को निर्मित किया गया था, परन्तु यह अभी तक अप्रमाणित है, कि इस प्राचीन भवन का निर्माण किसने करवाया था । इस क्षेत्र के निकट ही भगवान नेमिनाथ की जन्म स्थली शौरीपुर तीर्थ क्षेत्र है, और दोनों ही स्थलों के जिनालय समकालीन माने जाते हैं।[2] भिण्ड प्राचीन समय से ही व्यापारिक मार्गो से जुड़ा रहा है। कान्यकुब्ज (कन्नौज) और कौशाम्बी के साथ वाह, अटेर, भिण्ड होकर ही पद्मावती (पवाया) कांतिपुर (कुतवार) तथा गोपाद्रि (ग्वालियर) आया जाया करते थे। इब्नबतूता ने इसका वर्णन किया है।[3] इन दिनों वर्तमान बरही महत्वपूर्ण व्यापारिक नगर था। यह सूती वस्त्र व्यवसाय का प्रमुख केन्द्र था ।

दर्शनकथा में भी बल्लभपुर का उल्लेख आया है।[4]

भ्रमतो भ्रमतो तही आया जहां देश अवंति सुहायो।बल्लभ नगर सु मांहि
आयो से तत्सभ तांही । कूच करो तहां तै अब सोय
दिन अरूरात गिनैना कोय ।बहुत बात को कहैं बढ़ाय
बल्लभपुर में पहुंच आय।

यहां वर्णन मिलता है कि शौरीपुर मंदिर के पश्चात पाण्डे वीरसपाल के पुत्र जती महाराज गिरधरदास जी ने बल्लभगढ़ में वास किया और यहां एक अन्य मंदिर तैयार किया। यह अतिशय क्षेत्र प्रारंभ से ही खरौआ जैन समाज की सेवा में रहा है। स्थानी किवदंती के अनुसार भगवान महावीर के समवशरण स्थल बल्लभपुर (बरही) में देवों ने भव्य जिनालय का निर्माण किया था। सम्पूर्ण मंदिर बनकर तैयार हो गया था। केवल कलश चढ़ने शेष थे तभी प्रातःकाल हो गई और देव अंर्तध्यान हो गये। तत्पश्चात् इसी नगर के एक सेठ जिनदत्त ने मंदिर पर प्रतिष्ठा कराकर कलश चढ़ाए थे एवं महायज्ञ आयोजित किया।[5] वंश परंपरा के अनुसार यहां प्रथा थी कि बाहर से कोई जैन श्रावक यहां रहने के लिये आता था तो उसके लिये यहां के प्रत्येक जैन घर से एक दिन का भोजन और एक रूपया दिया जाता था। रूपयों से नवांगुतक व्यापार करता था और यहां के निवासियों का श्रेणी हो जाता था। यहां समानता, भ्रातत्व समाजवाद का एक उदाहरण है। वर्तमान समाजवाद भगवान महावीर के अपरिग्रह का ही रूप है।

वर्तमान में क्षेत्र पर पुजारी की व्यवस्था है। यहां भगवान अजितनाथ की पद्मासन पाषाण प्रतिमा संवत 1520 की है। अवगाहना 29"x8" की है । इस प्रतिमा के अलावा इस क्षेत्र पर खण्डित जैन प्रतिमा के नीचे का पाषाण भाग 5"x8" का है जिस पर पद्मासन प्रतिमा तथा 7"x6" के अन्य पाषाण भाग पर 13"x7" की खड्गासन जैन प्रतिमा है। मूलनायक भगवान अजितनाथ की यह मूर्ति न केवल आत्ममुग्ध करने वाली है, अपितु मूर्ति के निर्माण में स्वर्ण कलशों का उपयोग किया गया है और दुर्लभ प्रस्तरों से निर्मित

है।[6]इसके अतिरिक्त क्षेत्ररक्षक क्षेत्रपाल देव की मूर्ति भी यहां की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। इनके चमत्कारिक प्रभावों ने लोगों को आकर्षित किया है। मंदिर की मुख्य दीवार के दाहिने भाग में प्रवेश करके पास ही एक आला निर्मित था। इसी आले में यह विराजमान थे। स्थानीय निवासियों के अनुसार दीवार तोड़ने पर इनकी उपस्थिति का पता सन् 1990 में चला। यहां पर अश्विन कृष्ण अष्टमी को श्री 1008 भगवान अजितनाथ का वार्षिक मेला (महोत्सव) होता है एवं चैत्र सुदी पंचमी को भगवान अजितनाथ का निर्वाण लाडू चढ़ाया जाता है।

ikoa jRufxjh ¼ikokx<½

भिण्ड के विशाल भू–भाग पर बने ऐतिहासिक मंदिर एवं यत्र–तत्र बिखरी पड़ी दुर्लभ मूर्तियां यहां जैन धर्म की प्राचीनता को प्रकट करती हैं। ऐसा ही एक और क्षेत्र पावई जिसका पूर्ण नाम श्री दिगम्बर जैन नेमिनाथ अतिशय क्षेत्र पावई रत्नगिरी (पावागढ़) भिण्ड है। यह कुंआरी नदी के किनारे पर स्थित है। भिण्ड नगर की स्थापना के पूर्व पावई एक समृद्धशाली नगर था यहां सामंतों की गढ़ी थी । कहा जाता है कि भिण्ड के गोलालारे समाज के लोगों की भी यहां गढ़ी थी, जिसके संस्थापक श्री गुलाबचंद्र थे। यहां के जैन समाज की समृद्धता का अनुमान इसी से ज्ञात होता है कि यहां पर 135 खम्बों का विशाल जिनालय इस समाज ने बनवाया था। इस जिनालय में भगवान नैमिनाथ के ऊंचे पाषाण खण्ड पर भव्य प्रतिमा स्थित है। मंदिर के तल से मध्य भाग के दो गुना मंदिर का शिखर बना हुआ है जिस पर स्वर्ण कलश चढ़ा हुआ है मुख्य जिनालय से जटे हुए कक्षों में जैन मुनियों के लिये अलंकृत आश्रय एवं साधना स्थल निर्मित है। यहां पर 700 घर गोलालारे जैन समाज के थे, कालांतर में इस समाज के लोग यहां से इधर–उधर अन्य थानों में विशेषतः भिण्ड नगर एवं जिले के अन्य गांवों में फैल गये तथा कुछ देश में अन्य भागों में जाकर बस गए। यहां पर पंचकल्याण प्रतिष्ठा के अवसर पर पानी की व्यवस्था हेतु दो कुऐं खुदवाए दोनों कुंआ में 350–350 सीढ़ियां लगवाई।[7]

कालांतर में मध्यकाल में मुस्लिम के आक्रमण से क्षतिग्रस्त पुरातात्विक एवं चमत्कारी प्रतिमाऐं आज भी अतिशय क्षेत्र पावई (पावागढ़) में मौजूद हैं। भू–गर्भ से प्राप्त अत्यंत प्राचीन अतिशय युक्त चमत्कारिक प्रतिमा व अन्य प्राचीन प्रतिमाऐं यहां अभी भी भूमि में दबी पड़ी हैं, तथा आए दिन मिलती रहती हैं। यहां पर विशालतम चार मुख्य गेट थे, जो कि लगभग 18–20 कि.मी. क्षेत्र को घेरे हुये थे। ऐसा कहा जाता है कि इस क्षेत्र पर पंचकल्याण महोत्सव हुआ था। तत्पश्चात् मुस्लिम आक्रमण की त्रासदी के कारण जैन समाज विघटित होकर इधर–उधर निवास करने लगा और यहां के विशालतम मंदिर एवं प्रतिमाओं पर आघात पहुंचाया था। जिससे भयभीत होकर जैन समाज ने कुछ प्रतिमाओं को इधर–उधर छिपाया और कुछ को कुंऐ आदि में सुरक्षित रखा जो आक्रमण शांत होने

के पश्चात एक दूसरे मंदिर का निर्माण वहां के शेष जैन समाज ने कराया तथा धर्मशाला आदि बनवाई थी, जो आज की स्थिति में तो जीण–शीर्ण हालत में मौजूद हैं तथा वर्तमान में लोगों को कहीं भी किसी रूप में मूर्ति प्राप्त होती रहती है तथा कई लोगों को यहां पर स्वर्णाभूषण भी मिलता है।[8]

cjklk th ¼ijiVVu½ &

इस अतिशय क्षेत्र का पूर्ण नाम श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र बरासौं जी (पुरापट्टन) अतिशय क्षेत्र बरासौं जी ग्वालियर से भिण्ड होते हुये 90 किमी. एवं इटावा से भिण्ड होते हुए 50 किमी तथा भिण्ड से बरासौं क्षेत्र 19 किमी की दूरी पर स्थित है। पूर्व में इस नगरी का नाम पुरपट्टन था फिर बरनेर हुआ जो वर्तमान में बरासौं नाम से प्रसिद्ध है। यह वैशली नदी के तट पर स्थित है। किंवदंती है कि यहां देवों द्वारा विशालकाय मध्य कालीन एक पटल है जिसमें 3 मूर्तियां एवं एक शतक जिनबिम्ब स्थित हैं। संवत् 747 की विशालकाय छत्री आज भी अतिशय पूर्ण है जनश्रुति है कि यहां पर आज भी चंदन की सुगंध आती रहती है। चौथी शताब्दी के निर्मित दो विशालकाय गगनचुंबी भव्य जिनालय हैं जिसमें मध्य काल की जिन प्रतिमाएं विराजमान है। इसी धार्मिक नगरी के श्रीमंत सेठ दानवीर की प्रसिद्धि रही है। जिनके आज भी पदचिन्ह मौजूद हैं।[9]

इसे भगवान महावीर की समणशरण स्थली माना जाता है। मंदिर में तहखाना एवं प्राचीन सुरंग है। अश्विन वदी दूज को यहां वार्षिक मेला भी लगता है।उपरोक्त तीनों अतिशय क्षेत्र भिण्ड को भी एवं धार्मिक नगरी के रूप में स्थापित करते हैं। इन अतिशय क्षेत्रों में जैन समाज की धार्मिक आस्थाऐं तो जुड़ी ही है साथ–साथ अन्य धर्मावलम्बी भी इन अतिशय क्षेत्रों की धार्मिक मान्यताओं और ऐतिहासिकता का दर्शन करने आते हैं।

lnHk xFk &

1. डॉ. हुकुमचंद भारिल्ल, धर्म के दस लक्षण– पृष्ठ क्रं. 4
2. इतिहास एवं परिचय, श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र बरही पत्रिका से उद्धृत पृष्ठ क्रमांक 2
3. जिला गजेटियर भिण्ड– 1996 पृष्ठ क्रमांक 15
4. इतिहास एवं परिचय श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र बरही पत्रिका से उद्धृत पृष्ठ क्रमांक 3
5. डॉ. एस.के. जैन मंत्री श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र बरही से साक्षात्कार के द्वारा
6. वही – क्रमांक 4
7. श्री रामजीत जैन, गोलालारे जैन जाति का इतिहास पृष्ठ क्रमांक 34
8. डॉ. मुन्नालाल जैन के आलेखानुसार फनकार काजी तनवीर अभिनन्दन ग्रंथ पृष्ठ क्रमांक 609
9. वही – पृष्ठ संख्या 611

• • •

40

e/; Hkkjr e‹ i‹tk e.My vk‹nk‹yu

***Mk- d‹pu pk‹Md**

भारत में गांधी जी के आगमन के साथ कांग्रेस का अंग्रेजों के विरूद्ध नागरिक अधिकारों के लिए तीव्र आंदोलन चल पड़ा था। ऐसे में देशी रियासतों के मध्य भी कांग्रेस के आंदोलन से प्रेरणा स्वरूप जाग्रती फैल रही थी, परन्तु कांग्रेस की नीति देशी रियासतों के प्रतिपूर्णतः अहस्तक्षेप की थी, देशी रियासतों की प्रजामें भी जागरूकता बढ़ने लगी थी और वह अपने नागरिक अधिकारों की बहाली के उद्देश्य से कांग्रेस जैसी संस्था अपनी रियासत में भी चाहने लगी थी तथा इस उद्देश्य की पूर्ती के लिए कांग्रेस के आंदोलनों को स्थानीय स्तर पर सहयोग करने लगे। ऐसे में कांग्रेस भी देशी रियासतों के प्रति अपनी नीति बदलने के लिए उद्धृत हुई।

परन्तु कांग्रेस ने रियासतो के लिए तटस्थता की नीति ही अपनाई अतः ''देशी रियासतों के नागरिक अधिकारों की बहाली के उद्देश्य से सन् 1927 में देशी राज्य लोक परिषद की स्थापना की तथा भारतीय राजाओं को नागरिक अधिकार बहाल करने की अपील की रियासतों में प्रांतीय संगठन के लिये यत्न प्रारंभ किये'' इसी क्रम में मध्य भारत में सन् 1928 में आंदोलन आरंभ हुआ''।[1]

तत्कालीन स्थिति में देश की राजनीति में परिवर्तन आ रहा था तथा देश में नागरिक अधिकारों को लेकर जागृति फैल रही थी अतः देशी रियासतों में नागरिक अधिकारों के उद्देश्य से बटलर कमेटी गठित की गई। ''इंडियन स्टेट कमेटी की स्थापना 'सर हाड कार्ट बटलर' की अध्यक्षता में, भारतीय रियासतों में नागरिक अधिकारों के संदर्भ में रिपोर्ट प्रस्तुत करने के उद्देश्य से बनाई गई थी इस के सामने रियासती प्रजा का पक्ष प्रभाव शीली तरीके से रखने के उद्देश्य से देशी राज्य लोक परिषद शाखा के रूप में 1932 में खण्डवा में 'मध्य भारत देशी राज्य लोक परिषद की स्थापना की गई''।[2] मध्य भारत के कार्यकर्ताओं ने बटलर कमेटी के सम्मुख प्रभावी ढंग से मांग रखने के उद्देश्य से इस परिषद का विधिवत निर्माण किया।

***vfrfFk 0;k[;krk 'kkldh; egkfo/kky;] Vhdex<]e-i‹-**

''मध्य भारत देशी राज्य लोक परिषद का प्रथम अधिवेशन खण्डवा में गोविंद लाल जी पित्ती की अध्यक्षता में किया गया, इसमें श्री सिद्ध नाथ माधव आगर कर,स्वागत अध्यक्ष श्री रघु नाथ प्रसाद पर साई, मंत्री श्री कन्हैया लाल वैद्य संयुक्तमंत्री चुनेगये।''[3] इस मध्य भारत देशी राज्य परिषद स्थानीय स्तर पर शाखाओं का व्यापक निर्माण हुआ।'' मध्य भारत परिषद के नियंत्रण में कुल 65 राज्य रहे जिन की आबादी 1 करोड़ 15 लाख और क्षेत्रफल 16 हजार वर्ग मील था इसमें 145 डेली गेट्स थे जो 1 लाख पर 1 के हिसाब से चुने गये थे।[4] इससे मध्य भारत रियासती आंदोलन में शक्ति आ गई थी और अधिकारों के लिए संगठित लड़ने के परिणाम स्वरूप उपलब्धियां भी प्राप्त हुई।

''झाबुआ, धार, बड़वानी, रतलाम, इंदौर, देवास, जावरा, शैलाना आदि रियासतों की जनता पर अत्याचारों को प्रकाशित किया तथा प्रयत्नों से झाबुआ में शासक को स्थाई रूप से पद भ्रष्ट और निर्वासित होना पड़ा तथा रतलाम के दीवान में जर शिवजी को कुछ समय के लिए राज्य से हटना पड़ा।[5] इन उपलब्धियों को प्राप्त करने के लिए कुछ हानियाँ भी सहनी पड़ी।''इंदौर में जड़िया जी ब्रम्हलीन हो गये। कार्य कर्ताओं को निर्वासन व जेल की यातना भी सहनी पड़ी, रियासती अत्याचारों के शिकार भी बने।[6] पर संघर्ष ने आशाकी ज्वालादहकी की सम्पूर्ण मध्य भारत में जागृति आने लगी। आंदोलन को व्यापक सफलता मिलने लगी तथा राष्ट्रीय स्तर पर महत्व रखने वाले नेता भी इससे जुड़ने लगे।''14—15 मई 1939 ई. को दाहोद में आचार्य श्री नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में परिषद का दूसरा सफल अधिवेशन हुआ इसमें ग्वालियर और भोपाल एजेंसी की रियासतो के प्रतिनिधियों ने भी भाग लिया।[7]

यह अधिवेशन काफी असरदार था इसमें बड़ी मात्रा में प्रतिनिधि थे । मध्य भारत की रियासतों में जागृति फैल चुकी थी।''आचार्य नरेन्द्र देव अध्यक्ष और कार्य वाहक अध्यक्ष स्वर्गीय एस.एम. आगरकर जी ने मध्य भारत में प्रभाव शाली कार्य किये'' ।[8] दूसरे अधिवेशन में संगठन की स्थिति और मजबूत हो गई थी, क्योंकि प्रभाव शाली उच्च स्तर तक पहुँच वाले राज्य को जीवन समर्पित कर चुके नेता इस से जुड़ चुके थे।'' आचार्य नरेन्द्र देव जी जैन उच्च कोटी के सभा पति तथा श्री कन्हैया लाल वैद्य जैसे कर्मठ कार्यकर्ता को प्रधानमंत्री पाकर मध्य भारत देशी राज्य परिषद एक जन आंदोलन की प्रतिनिधि संस्था बन गई थी। इसके निर्णयों का प्रभाव शासन वर्ग और सार्वजनिक संस्थाओं पर समान रूप से पड़ता था'' ।[9] तथा प्रजा का संघर्ष, त्याग, बलिदान की भावना, व्यापक जनाधार तथा राष्ट्र और उच्च कोटी के उद्देश्य का समर्पित नेताओं के साथ मध्यारत के प्रजामंडल—रियासती आंदोलन, प्रान्तीय तथा राष्ट्रीय स्तर पर अपनी छाप छोड़ने में सफल रहें और राष्ट्र निर्माण तक सतत संघर्ष करते रहें।

LkUnHk Lkph

1. वैद्य कन्हैया लाल–आवाज 21–2–1943
2. अली हामिद सैयद–जय जी प्रताप पृ. 15, मध्य भारत देशी राज्य लोक परिषद का संक्षिप्त इतिहास।
3. वैद्य कन्हैया लाल–आज 21–3–1945
4. अली हामिद सैयद–जय जी प्रताप पृ. 16 मध्य भारत राज्य उद्घाटन अंक पृष्ठ 16
5. वैद्य कन्हैया लाल–आज– 21–3–1945
6. वैद्य कन्हैया लाल–आज– 21–3–1945
7. वैद्य कन्हैया लाल–आज– 21–3–1945
8. अली हामिद सैयद–जय जी प्रताप, मध्य भारत उदघाटन अंक पृ. 16
9. अली हामिद सैयद–जय जी प्रताप, मध्य भारत उदघाटन अंक पृ. 16

●●●

41

1942 d vkUnkyu e o'kkyh dh Hkfedk

*Mk- j.k dekjh

7 अगस्त को अखिल भारतीय कांग्रेस की बैठक बम्बई में हुई। 8 अगस्त को 'भारत छोड़ो' के नारे और जयघोष के साथ प्रस्ताव भारी बहुमत से पारित हो गया। गाँधीजी ने 'करो या मरो' का मंत्र देते हुए जनता से अपील की कि यह संघर्ष अंतिम होगा। 9 अगस्त को सुबह छह बजे गाँधी जी सहित सभी प्रमुख नेताओं को गिरफ्रतार कर लिया गया। गिरफ्तारी इतनी अकस्मात् हुई कि जनता को आन्दोलन के सम्बन्ध में निर्देश नहीं मिल सका।[1] 9 अगस्त को राजेन्द्र प्रसाद को अस्वस्थता की स्थिति में ही पटना में गिफ्तार कर जेल अस्पताल पहुँचा दिया गया।[2] इसी दिन बिहार गजट का एक असाधरण अंक प्रकाशित कर अखिल भारतीय कांग्रेस कार्यकारिणी, बिहार कांग्रेस कार्यकारिणी, बिहार प्रांतीय कांग्रेस कमिटी, बिहार कांग्रेस कार्यपालिका कमिटी को उनकी शाखाओं सहित गैर कानूनी घोषित कर दिया गया। इसके अतिरिक्त सभी जिला अनुमंडल और थाना कांग्रेस कमिटियों को भी गैर कानूनी घोषित कर दिया गया। आन्दोलन का समर्थन अथवा प्रोत्साहन देने वाले समाचार पत्र के प्रकाशकों को कानून उल्लंघन का अपराधी घोषित कर दिया गया।[3]

लालगंज थाना के बाबू दीपनारायण सिंह को पुलिस ने बिठौली आश्रम में 10 अगस्त को गिरफ्तार कर लिया। पुलिस ने थाना कांग्रेस के कार्यालय को जब्त कर लिया और उसके अध्यक्ष श्री जगन्नाथ प्रसाद साहू को गिरफ्तार कर लिया। 11 अगस्त को लालगंज में जुलूसें निकाली गयी जिसमें काफी लोग शरीक हुए। विश्वनाथ प्रसाद जयसवाल और दसई प्रसाद दिनेश के नेतृत्व में एक जत्था डाकघर की ओर गया और उस पर राष्ट्रीय ध्वज फहरा दिया। एक दूसरे जत्था ने रजिस्ट्री ऑफिस पर झंडा फहराया। थाना पर भी झण्डा फहराने का प्रयत्न किया गया, किन्तु पुलिस ने गोली चला

---

*,lkfl,V ikQlj bfrgkl teuh yky dkyt]gkthij ch-vkj-,- fcgkj fo'ofo|ky;] eqtQjij] fcgkj

दी। इस गोलीकांड के शिकार श्री सिंहेश्वर ठाकुर की मृत्यु घटना स्थल पर ही हो गई। लगभग 40 व्यक्ति आहत हुए। हरिसन महरा भी जख्मी हुए और उनकी मृत्यु बाद में मुजफरपुर अस्पताल में हो गई।[4] 15 अगस्त को एक बहुत बड़ी भीड़ ने श्री बसुदेव नारायण सिंह के नेतृत्व में लालगंज थाना पर आक्रमण करके उस पर कब्जा कर लिया और राष्ट्रीय झंडा फहरा दिया। थाना पर उस समय श्री आर॰ एन॰ पाण्डे सब डिप्टी मजिस्ट्रेट पदस्थापित थे। उन्होंने भीड़ के सामने आत्मसमर्पण कर दिया। सब रजिस्ट्री ऑफिस और डाकघर पर भी राष्ट्रीय झंडा फहराया गया।[5]

हाजीपुर शहर के छात्रों में काफी जोश था। हाई स्कूल के शिक्षक अक्षय कुमार सिंह इस्तीफा देकर उनका नेतृत्व कर रहे थे। 14 अगस्त को छात्रों का एक जुलूस हाजीपुर शहर पहुँचा। इस जुलूस में पं॰ चन्द्रभूषण तिवारी और अक्षय बाबू भी शामिल थे। दूसरे दिन कुछ लोग हाजीपुर रेलवे स्टेशन पर टूट पड़े। स्टेशन पर खड़ी एक पैसेन्जर ट्रेन की इंजन को लोगों ने तोड़–फोड़ कर बेकार कर दिया। एक फर्स्ट क्लास और एक थर्ड क्लास के डिब्बों को भी तोड़–ताड़ दिया गया। उसके बाद मालगाड़ियों की बारी आयी। घंटो डिब्बों को तोड़–ताड़कर लोगों ने हजारों का सामान लूट लिया। वहाँ का लूट–पाट खत्म कर लोग दूसरे जुलूस में शामिल हो गये जो जेल तोड़ने जा रहा था।

जुलूस के जेल के पास पहुँचते ही जेल के भीतर और बाहर 'इन्कलाब जिन्दाबाद' जेल को तोड़ दो' के नारों से आसमान फटने लगा। जेल के भीतर के वार्डर को मुरेठे से बांध दिया गया। बाहर के वार्डर को फाटक से हटा कर जुलूस ने उसी जगह एक खंभे से बांध दिया। फिर लक्खी नारायणी जी विद्यार्थी और अन्य जवानों ने फाटक के ताले को हथौड़ी से तोड़ दिया।[6] जेल का फाटक खोल दिया गया और 79 कैदी छुड़ा लिए गये। डाकघर को भी क्षतिग्रस्त किया गया। इसके बाद गोली चली। यद्यपि कोई हताहत नहीं हुआ, लेकिन बुझावन दुसाध को काफी छर्रे लगे। जेल से छुड़ाये जानेवाले लोगों में डा॰ गुलजार प्रसाद, श्री राजेश्वर पटेल, स्वामी जगन्नाथानंद श्री जगन्नाथ साहू, श्री गणेश महतो ओर केदार सिंह आदि थे।[7]

16 अगस्त को हजारों की तादाद में दियारे के लोग हंसिया और बोरा लिये शहर में टोलियां बांध–बांध कर आने लगे। अक्षय बाबू स्वयंसेवको के साथ घूम–घूमकर आगंतुकों को समझा– बुझाकर रवाना करने लगे। शहर छोड़कर लोग कोनहारा घाट पर लगी मालगाड़ियों पर हाथ साफ करने लगे। स्वयंसेवकों को रोकने की सारी कोशिशें बेकार गयी। सारा माल जिसमें अनाज की मात्रा अधिक थी लोग लूट–पाटकर चले गये।[8] 13 अगस्त को महुआ थाने पर जुलूस ने धावा बोल दिया। थानेदार श्री सूर्यनारायण सिंह ने कांग्रेसी सरकार का सिपाही बनने में ही अपनी भलाई समझी। थाने से जनता खुशी–खुशी रजिस्ट्री ऑफिस आयी और वहाँ पर झण्डा फहरा दिया। जंदाहा और सिंघारा के डाकघर और स्कूल पर भी राष्ट्रीय झण्डा फहरा दिया गया।

15 अगस्त को देहात से लोग जुलूस बांधकर आये और थाना पर झंडा फहरा

दिया। वहां से ये सब डाकघर पहुँचे और वहाँ भी झण्डा फहरा दिया। फिर रजिस्ट्री ऑफिस पर झण्डा फहराकर शांतिपूर्वक वापस चले गये।[9]

राघोपुर थाना पर झंडा फहरा कर लोग शांतिपूर्वक चले आये, पर दो दिन बाद ही ज्ञात हुआ कि थानेदार ने झण्डा उतार फेंका है। उत्तेजित जनता ने बड़ी तैयारी के साथ थाना पर आक्रमण कर दिया और थाने के सारे सामान जलाकर खाक कर दिया। 17 अगस्त को मक्खू सिंह सिपाही डाक ला रहा था, उससे लोगों ने थैला छीन लिया और कहा अब जनता का राज हो गया है सरकारी डाक की अब कोई आवश्यकता नहीं है। 18 अगस्त 1942 को हाजीपुर अनुमंडल के महनार थाना पर राष्ट्रीय ध्वज फहरा दिया गया। महनार थाना पर यूनियन जैक को उतार कर तिरंगा फहरानेवाले सेनानियों में रामचन्द्र सिंह कुशवाहा, अब्दुल हमीद तथा गंगागुप्ता अग्रणीय थे। थाना के दरोगा ब्रहमदेव प्रसाद ने आत्मसमर्पण कर दिया तथा उन्हें गाँधी टोपी पहनाकर थाना के चार्ज से बर्खास्त कर दिया गया। इस घटना को अंजाम देने के लिए आस–पास के क्षेत्रों से हजारों आन्दोलनकारी सुनियोजित ढंग से 'करो या मरो' का संकल्प लेकर आ जुटे थे। लेकिन मदन झा, गंगा गुप्ता जैसे गांधीवादी नेताओं की दूरदर्शिता एवं वर्चस्व के कारण महनार की अगस्त क्रान्ति में हिंसक वारदातें न हो सकी। आन्दोलनकारियों का दूसरा दल क्रान्तिकारी विचारों का पक्षधर था। इस दल की इच्छा थी कि दरोगा को मार दिया जाये, थाना, डाकघर एवं रजिस्ट्री ऑफिस के कागजातों को फूँक दिया जाये ताकि आन्दोलन से सम्बन्धित अभिलेख नष्ट हो जाये और भूमि की नयी व्यवस्था की जा सके पर गांधीवादी नौजवान थाना, डाकघर, रजिस्ट्री ऑफिस की क्षति को राष्ट्रीय क्षति मानते थे।[10]

महनार की आजादी से उत्साहित होकर क्रान्तिकारियों ने महनार बाजार से महनार रोड, रेलवे स्टेशन तक के तार के खंभों को हथौड़ा जूलूस निकालकर तोड़ डाला। इसमें महनार, पोहियार और चकेयाज के आन्दोलनकारियों ने अधिक सक्रियता दिखलायी। महनार क्षेत्र में रामचंद्र सिंह कुशवाहा, अब्दुल हमीद, गंगा गुप्ता, विश्वनाथ प्रसाद, मदन झा, राम प्रसाद ठाकुर, राम प्रसाद वर्णवाल, सूर्यदेव सिंह, जगन्नाथ मिस्त्री, जगदेव गुप्ता, महेश साह, बालेश्वर चौबे, जंगी झा, मिश्री सिंह, विश्वेश्वर प्रसाद, राजेन्द्र सिंह आदि ने तथा देसरी क्षेत्र में विन्ध्यवासिनी सिंह, लाल बहादुर सिंह, रामचंद्र सिंह शिवनन्दन सिंह, महेन्द्र प्रसाद गुप्ता रामनंदन पाण्डेय जगदम्बा पटेल, भरत जयसवाल, भुखलू सिंह, चन्द्रभानु सिंह, डॉ बच्चू नारायण, शत्रुध्न प्रसाद आदि ने अगस्त क्रान्ति के विभिन्न कार्यक्रमों में उल्लेखनीय योगदान दिया।[11] सराय स्टेशन की भी दशा बहुत अंशों में भगवानपुर स्टेशन जैसी ही थी। यहाँ भी कागज पत्रों को जलाया गया, टिकट को जलाया गया और बहुत सी चीजें बरबाद की गई। वहाँ रूपये –पैसे जो मिले सभी छीन लिया गया।[12] सराय और हाजीपुर स्टेशनों के बीच 22 अगस्त को ही रेल लाईने उखाड़ दी गई थी। 24 अगस्त को मुजफ्रपफरपुर और कांटी स्टेशनों के बीच रेल पटरियां उखाड़

दी गई।[13] मुजफरपुर से हाजीपुर जानेवाली सड़क काट दी गयी और पेड़ काटकर उस पर गिरा दिये गये, जिससे वह जाम हो गई।[14]

एक तरपफ आन्दोलनकारियों का क्रोध सरकारी संस्थाओं को ध्वंस कर आजाद भारत की नींव डालने में लगी हुई थी तो दूसरी ओर ब्रिटिश प्रशासन क्रान्ति को कुचलने के लिए आमादा थी।

महनार की आजादी ब्रिटिश सरकार के लिए एक चुनौती थी। अतः त्रास्त एवं भयभीत अंग्रेज अधिकारियों ने अनुमंडल के सभी थानेदारों तथा सिपाहियों को महुआ थाना में संरक्षण दिया।[15] यहाँ का दरोगा काफी आतंक फैलाये हुए था। इस कारण महुआ थाना की जनता बहुत भयभीत थी।[16] 1 सितम्बर 1942 को टॉमियों की एक बड़ी फौज महनार आ गयी। फिर नेताओं तथा महारथियों की धर–पकड़ शुरू हुई। उसी शाम को मदन झा गिरफ्तार कर लिये गये। 2 सितम्बर को महनार की प्रतिक्रिया देखकर टॉमियों ने अब्दुल हमीद का घर जला दिया। रामचंद्र सिंह की पुस्तकों, कागजातों सभी को आग लगा दी गई। कृष्ण प्र. वर्णवाल तथा अन्य क्रान्तिकारियों के घरों पर छापे मारे गये। कुर्की जब्ती की गयी, फसलों को रौंदा दिया। इन दमनात्मक कार्रवाईयों के बाद 3 सितम्बर 1942 को थाना पर अधिकार कर दिया गया। इस प्रकार 18 अगस्त से 3 सितम्बर तक महनार आजाद रहा।[17] देसरी हाई स्कूल के प्रधानाध्यापक विन्ध्यवासिनी सिंह को उनके छात्रों सहित स्कूल से निष्कासित कर दिया गया। रिपोर्ट से पता चलता है कि उनके साथ निष्कासित होनेवाले छात्रों में थे–महेन्द्र प्रसाद गुप्ता (कैला) वर्ग–दशम, रामचंद्र सिंह (खरिका) वर्ग–दशम, शिवनंदन सिंह (फतहपुर) वर्ग–दशम् और लाल बहादुर सिंह (मधैल) वर्ग– अष्टम् थे।

अपनी क्रान्तिकारी गतिविधियों से इन्होंने न केवल देसरी को, इसके साथ–साथ महनार, किचनी रामपुर, पोहियार, फतहपुर, मोख्तारपुर, लावापुर जैसे क्रान्ति केन्द्रों को सक्रिय बनाये रखा । इन्होंने वे सभी कार्य किये जिससे आजादी के जंग को बल प्राप्त होता था। एक बार तम्बाकू व्रिकेता का वेश धरण कर लालगंज से पैदल चलकर महनार के क्रान्तिकारियों को गुप्त डाक भी पहुँचाया था।[18] देसरी में क्रान्ति के संचालक विन्ध्यवासिनी बाबू ने 28–29 अगस्त 1942 को ही सेनानियों को दमनचक्र की संभावना से भूमिगत हो जाने का निर्देश किया था। इस प्रकार आन्दोलन भूमिगत नेताओं के हाथ में चला गया। ऐसी स्थिति में क्रान्तिकारियों को सूत्राबद्धता के लिए गुप्तरूप से डाक पहुँचाया जाता था।[19]

हाजीपुर अनुमंडल के महनार थाना पर 18 अगस्त को श्री मदन झा के नेतृत्व में समानान्तर सरकार की व्यवस्था की गयी। महनार थाना, डाकघर, रजिस्ट्री ऑफिस पर कब्जा कर लेने के बाद यहां के प्रशासन की बागडोर निम्नलिखित सात महारथियों ने थाम ली–

रामचंद्र सिंह कुशवाहा 2 अब्दुल हमीद 3 विश्वनाथ प्रसाद श्रीवास्तव 4 रामबालक सिंह 5 रवीन्द्र प्रसाद 6 गंगा गुप्ता एवं 7 राम प्रसाद वर्णवाल। इनमें से प्रत्येक महारथी को गोपनीय फैसला करने तथा वीटो का अधिकार प्राप्त था। इन्हीं लोगों ने थानेदार को बर्खास्त किया था। डाकघर के डाकपाल देशभक्त थे। अतः उन्हें तथा कर्मचारियों को फिर से बहाल कर काम पर नियुक्त कर दिया गया। रजिस्ट्री ऑफिस अगले आदेश तक बन्द कर दिया गया। थाना को बंदकर नया थाना नानकशरण मठ में खोल दिया गया। धर्मशाला में कचहरी लगती थी,फैसले होते थे। इन महारथियों के ऊपर तीन सदस्यों का बोर्ड ऑफ डिक्टेटर्स बना था, जिसमें रामचंन्द्र सिंह, गंगा गुप्ता एवं अब्दुल हमीद को विशेष अधिकार प्राप्त था। आजाद महनार के सामने शांति व्यवस्था, महंगाई, कालाबाजारी आदि की समस्याएँ प्रत्यक्ष हुई, जिनका समाधन महारथियों ने गांवों में रक्षा दल, पंचायत समिति की स्थापना एवं व्यापारियों की बैठकें बुलाकर, मूल्य नियंत्रण के द्वारा किया। आजाद महनार की जनता काफी प्रसन्न थी।[20] थाने भर में घोषणा कर दी गयी थी कि अंग्रेजो का राज्य समाप्त हो गया है और अब हम आजाद हैं। 18 अगस्त से 3 सितम्बर महनार में जनता राज कायम रहा।

शुरू–शुरू में कुछ लोगों ने समझा अंग्रेजी राज उठ गया है और अब हमलोग मनमाने ढंग से अपनी जरूरतें पूरी कर सकते हैं। इसलिए जहां– तहां चोरी और लूट की घटनाएँ भी घटी। श्री मदन झा के अनुसार जहाँ–जहाँ चोरी और लूट की घटनाएँ घटी, वहाँ जाकर उनलोगों ने तहकीकात की और माल बरामद करवाकर मालवाले को सौंप दिया। कांग्रेस की इन कार्रवाईयों के कारण जनता पर कांग्रेस की धक जम गयी।[21]

अक्टूबर – नवम्बर 1942 तक स्थिति बदल चुकी थी। बिहार के अनेक फरार कार्यकर्त्ता नेपाल की तराई की ओर चले गये थे। इनमें से कुछ ने वहाँ बन्दूकें, गोलियां, गोले, बर्छा तथा कुछ अन्य हथियार एकत्र किए। 1942 की क्रान्ति शुरू होने के समय से या उसके दरम्यान देश के जेलों में पड़े कुछ देशभक्त जेलों से निकलने और उस संकटकाल में आजादी की लड़ाई में हाथ बंटाने को अधिर हो रहे थे। इन्हीं उद्देश्यों से प्रेरित होकर हजारीबाग जेल से 9 नवम्बर 1942, दीपावली की रात को श्री जयप्रकाश नारायण, श्री रामनन्दन मिश्र, श्री योगेन्द्र शुक्ल, श्री सूरज नारायण सिंह, श्री गुलाबी ;गुलाबचन्द गुप्त सोनार और शालिग्राम सिंह ;हजारीबाग जिला कांग्रेस कमिटी के सचिवद्ध जेल की दीवार फांद कर फरार हो गये।

इस प्रकार 1942 के आन्दोलन में वैशाली ने काफी आहुतियों के बाद ब्रिटिश प्रशासन को विस्थापित कर अपना वर्चस्व कायम कर लिया था ।

I nHk I ph&

1. बलदेव नारायण, अगस्त क्रान्ति, बिहार अभिलेखागार पटना, नव संस्करण 2007 पृ॰ 20–23
2. सर्चलाईट, अगस्त 10, 1942
3. के॰ के॰ दत्ता, बिहार का स्वतंत्रता संग्राम भाग–3 ,बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना ,द्वि॰ संस्करण 1999 , पृ॰ –30
4. वही,भाग –2 पृ॰ – 49 –50
5. वही पृ॰ – 60
6. वही
7. बलदेव नारायण, वही,पृ॰ – 110
8. वही पृ॰ – 111
9. वही पृ॰ – 159
10. प्रफुल्ल कुमार सिंह 'मौन', सेनानी,कांग्रेस शताब्दी समारोह समिति, महनार (वैशाली) बिहार, प्रथम संस्करण 1985, पृ॰– 9
11. वही, पृ॰– 9
12. वही
13. के॰ के॰ दत्ता, वही, भाग–3 पृ॰– 102
14. बलदेव नारायण, वही,पृ॰ – 112
15. जनकधरी प्रसाद, कुछ अपनी कुछ देश की (आत्मकथा),जानकी प्रकाशन, पटना द्वि॰ संस्करण 2009, पृ॰ –132
16. प्रफुल्ल कुमार सिंह मौन, वही, पृ॰ –11
17. वही
18. वही पृ॰ – 10
19. बलदेव नारायण, वही,पृ॰ – 231–232
20. वही,पृ॰ – 250
21. वही,पृ॰ – 231–232

• • •

42

18oh 'krkCnh e vo/k e oL= m|kx

*Mk- vpyk lkudj

18वीं श्ताब्दी में अवध में वस्त्र उद्योग उन्नत अवस्था में था और यह अवध की संपन्नता का एक प्रमुख कारण भी था। वह परिस्थितियां जिन्होंने अवध में वस्त्र उद्योग के विकास को उन्नत स्तर तक पहुँचाया और उसे देश में वह स्थान दिलाया जिसके कारण न केवल देशी ताकतें अवध की दुश्मन बन गई। बल्कि अंग्रेजों ने भी इसकी संपन्नता के कारण इसे अपना निशाना बनाया। इसका प्रारंभ 1722 में सआदत खाँ बुरहान–उल–मुल्क के अवध का गवर्नर बनने से प्रारंभ होता है।[1] मुगल शासन में जब सआदत खाँ को अवध का गवर्नर नियुक्त किया गया तब उसके प्रयासों से अवध में शांति और विकास का मार्ग खुल गया। देश के विभिन्न भागों से अनेक कारीगर और कलाकार अपने हुनर के साथ पनाह की तलाश में अवध आये। क्योंकि उस समय दिल्ली और उत्तर पश्चिम भारत में मराठों के लगातार आक्रमणों ने शांति व्यवस्था बर्बाद कर दी थी। शांति और विकास का क्रम उसके उत्तराधिकारियों सफदरजंग और शुजाउद्दौला के शासन में भी बना रहा।

इन परिस्थितियों ने बहुत से कारीगरों को आश्रय हेतु इस क्षेत्र की ओर आने के लिए मजबूर कर दिया। जिसमें सबसे अधिक पलायन अवध की ओर हुआ। शांति और सुरक्षा के वातावरण ने कारीगरों को अपनी ओर आकर्षित किया। नवाबों द्वारा दिये गये संरक्षण और प्रोत्साहन ने उन्हें पुनः अपना कार्य प्रारम्भ करने को प्रेरित किया। अवध की स्थिति के विषय में एच.के. नकवी ने लिखा है कि ''मुगल साम्राज्य के पतन के समय जो नई क्षेत्रीय शक्तियां उभरी, उस तात्कालिक हिन्दुस्तान में अवध एक बड़ा, संपन्न और सुशासित क्षेत्र था।''[2] अवध की कृषि दशा तो सदैव अच्छी अवस्था में थी। अतः यहाँ कच्चे माल की उपलब्धता पर्याप्त मात्रा में थी। प्रचुर मात्रा में कच्चा माल और कारीगरों के परिश्रम को जब राज्य द्वारा सुरक्षा प्रदान की गई तब वस्त्र उद्योग की उन्नति को एक तीव्र गति प्राप्त हुई। जिसने अवध की पहचान एक प्रमुख औद्योगिक शहर के रूप में विकसित करी।

***शासकीय वीर सावरकर महाविद्यालय पचोर, जिला राजगढ़ (म.प्र.)**

इन अनुकूल परिस्थितियों में कुछ अन्य भी सहायक थी, जिन्होंने यह सुनिश्चित किया कि उत्पादन की निरंतरता बनी रहे। जिसमें प्रथम निर्मित वस्त्रों की माँग थी। क्योंकि यदि यह उद्योग मात्र क्षेत्र–विशेष की आवश्यकता पूर्ति हेतु कार्य करता तो शीघ्र ही मांग में कमी आ जाती और उत्पादन क्षमता कम करनी पड़ती। परन्तु अवध के क्षेत्रों में निर्मित वस्त्रों की माँग, मात्र इसी क्षेत्र विशेष में न होकर भारत के अन्य भागों से भी की जा रही थी। जैसा कि नकवी ने लिखा है कि ''1799 में लखनऊ ने दिल्ली के सिपाहियों के लिए शाही फरमान पर 5000 कोट बनाये थे।''[3]

बेली ने अवध के वस्त्रों की इस माँग को रेखांकित करते हुए लिखा है कि ''अवध के वस्त्र फर्रूखाबाद, मराठा क्षेत्रों और यहाँ तक कि राजस्थान के दूरस्थ क्षेत्रों में उपलब्ध थे। पश्चिमी व्यापारियों में इसकी माँग इतनी अधिक थी कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी को इसकी आवश्यकता महसूस होने लगी कि वह लखनऊ दरबार में अपनी राजनीतिक शक्ति का प्रयोग कर अवध के टांडा और आलियाबाद के बुनकरों पर अपना एकक्षत्र आधिपत्य बनाये।''[4]

अनुकूल परिस्थितियों ने इस समय के वस्त्र उद्योग को नई ऊँचाइयां दी। चूँकि उस समय वस्त्र उद्योग के प्रमुख केन्द्र पंजाब और लाहौर को नादिरशाह के आक्रमण ने बर्बाद कर दिया था। अतः उन परिस्थितियों में अवध को स्वर्णिम अवसर प्राप्त हुआ कि वह उत्पादन की कमी को पूर्ण करे। उत्तर पश्चिमी प्रांत की स्थिति के विषय में के.एन. चौधरी ने लिखा है ''भारत के चार प्रमुख औद्योगिक क्षेत्रों जिनका सूती वस्त्र उत्पादन के निर्यात में विशेष स्थान था, वह थे पंजाब, गुजरात, कोरोमण्डल तट और बंगाल। पंजाब में बहुत से केन्द्रों की स्थापना का प्रमुख कारण निर्यात की बड़ी मांग था।''[5] इससे स्पष्ट होता है कि जब मराठा आक्रमण के कारण गुजरात और बाहरी आक्रमणों के कारण पंजाब में स्थितियां उत्पादन के अनुकूल नहीं रहीं। तब यह उस स्थान के लिए उपयुक्त समय था, जहाँ पर शांति और व्यवस्था स्थापित थी, कि कारीगर अपने उत्पादन को बढ़ी हुई मांग के अनुसार बढ़ा सकते थे और उस रिक्त स्थान की भरपाई कर सकते थे। इसके लिए उन्होंने अथक परिश्रम किया और अवध को एक औद्योगिक केन्द्र के रूप में परिवर्तित कर दिया।

16वीं और 17वीं शताब्दी में अवध में साधारण और कीमती सफेद कपड़ा कम मात्रा में बनाया जाता था। परन्तु 18वीं शताब्दी में यह मात्रा अत्यधिक हो गई जिसका उल्लेख नकवी ने किया कि 18वीं शताब्दी के मध्य में स्थिति यह बन गई कि ''पश्चिम के केन्द्र एक–एक करके अव्यवस्था के कारण बन्द होने लगे। 18वीं शताब्दी के मध्य तक उनकी पूर्ववर्ती संपन्नता का कोई अवशेष नहीं बचा था। लाहौर.....कुछ समय तक संघर्ष करता रहा परन्तु उसके भी कुछ ही दिन बचे थे। अन्त में .....परिस्थितियां इतनी खराब हो गई कि अंग्रेजो ने अपनी आगरा की फैक्ट्री को 1654 में बन्द करने का निश्चय कर लिया.....जबकि दूसरी ओर नजीबाबाद, फर्रूखाबाद और अवध जैसे क्षेत्रो में शांतिपूर्ण प्रशासनिक और औद्योगिक संरक्षण की निगरानी ने.....इसे बढ़ावा दिया और यहां तक कि

नये केन्द्र बनाने में जैसा कि शाहजहाँपुर, बरेली, फर्रूखाबाद, खैराबाद और दरियाबाद को या पूर्व में स्थापित केन्द्रों जैसे लखनऊ और बनारस को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया।''[6]

18वीं शताब्दी में अवध की वस्त्र उद्योग में प्रभुता का आभास इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि मिर्जापुर को उस समय के विदेशी व्यापारी 'भारत का मैनचेस्टर' कहते थे। यहाँ निर्मित वस्त्रों को उनके स्थान के नामों के द्वारा पहचाना जाता था। जैसे दरियाबाद में निर्मित उत्पादन को दरियाबादी और खैराबाद में बने सामान को खैराबादी कहा जाता था। जिससे ज्ञात होता है कि उनकी विशेषता उनके निर्माण के स्थान से जुड़ी हुई थी जो उन्हें अन्य स्थानों के उत्पादन से अलग पहचान दिलाती थी। बेली ने अवध में काम करने वाले बुनकरों की संख्या 2,50,000 और बनारस में 60,000 बताई।[7]

इतनी बड़ी संख्या में बुनकरों द्वारा उत्पादन उद्योग की उन्नति को प्रतिबिम्बित करता है। यह न केवल अवध की समृद्धि के संवाहक बने, बल्कि यहां कि अनुकूल परिस्थितियों में इनको जीविकोपार्जन का साधन भी उपलब्ध हुआ। अर्थात रोजगार के सृजन ने उत्पादन के साथ उत्पादकों को भी अवसर उपलबध कराया कि वह सुख पूर्वक जीवन यापन कर सकें। 1783 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने ढाका में 8,29,200 रू0 में 40,500 टुकड़े, यानि प्रति टुकड़ा 20.50 रूपये की दर से खरीदे और पटना में 4,14,200 रू0 में 96,800 टुकड़े यानि 4.75 रू0 में खरीदे। पूर्व भारत के अन्य बुनाई केन्द्रों के मुख्य मूल्य इन्हीं दो सीमाओं के अन्दर कुछ कम या अधिक थे।[8] यह एक ऊँची दर थी। अवध में जिन कारणों के कारण लाहौर और पंजाब के बुनकर आये थे। लगभग उन्हीं कारणों के कारण वहाँ के व्यापारियों आदि ने भी अपने मूल क्षेत्रों को छोड़ा। जिसके कारण व्यापारिक मार्ग भी अवध के अनुकूल ढूँढ़े गये। जैसा कि जेन कर्सबूम ने अपने संस्मरण में इस बात का उल्लेख किया कि ''वाणिज्य .....का मार्ग जो पूर्व में दिल्ली और मुगल बंगाल के मध्य था। वह बदलकर लखनऊ और कलकत्ता के मध्य बनारस और पटना के द्वारा होने लगा।''[9]

इसके लिए स्थल व जलमार्ग दोनों का प्रयोग किया जा सकता था। क्योंकि गंगा नदी अवध को बंगाल से जोड़ती थी और मध्य काल में नदी मार्ग का प्रयोग बड़ी मात्रा में सामान को पहुँचाने के लिए किया जाता था। दूसरे, स्थल मार्ग हेतु भी मुगल काल में काफी कार्य किया गया था। अतः यातायात मार्ग की सुविधा ने उद्योग के विस्तार को बढ़ाने का कार्य किया क्योंकि बंगाल से सरलतापूर्वक सामानों को समुन्द्र मार्ग द्वारा विदेश भेजा जा सकता था।

इस प्रकार 18वीं शताब्दी की स्थितियां वस्त्र उद्योग के विकास के सर्वथा अनुकूल होने के कारण व्यापारियों ने इस उद्योग में पूँजी का निवेश किया। क्योंकि उस समय नवाबों ने राज्य का पूरा संरक्षण उद्योगों को दिया। जिसका प्रयोग व्यापारियों ने उद्योग के विकास और विस्तार के लिए किया। इस क्षेत्र में वस्त्र कला के विकास ने समृद्धि को आकर्षित किया। समृद्धि ने अनेक नई परेशानियों को भी अपनी ओर आमंत्रण दिया। क्योंकि अवध की इस समृद्धि ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को लालच दिया कि यदि वह इस

महत्वपूर्ण क्षेत्र पर अधिकार कर लेगी तो राजनीतिक शक्ति के साथ ही उसे एक ऐसा अनमोल खजाना मिल जाएगा जिससे उसकी कई आर्थिक व सैनिक आवश्यकताओ को सरलतापूर्वक पूरा किया जा सकता था।

अंग्रेज अवध की समृद्धि के विषय में जानते थे, और यहाँ के सूती निर्मित कपड़ो की मांग से भी परिचित थे। अतः जैसे ही उन्हें मौका मिला उन्होंने इसके उद्योग को बर्बाद करने के लिए षड्यंत्र करना प्रारम्भ कर दिया। अंग्रेजों ने अवध पर कुशासन का आरोप लगाकर 1856 में उस पर अपना अधिकार कर लिया। परन्तु इसका प्रमुख कारण यहाँ के उद्योग को बर्बाद करके ब्रिटेन के उभरते सूती वस्त्रों को प्रोत्साहित करना था। जैसा कि प्रो. बिपिन चन्द्र ने लिखा है ''वास्तव में अवध के बाजार की क्षमता मानचेस्टर में बने समानों के लिए इतना अधिक थी जिसने डलहौजी की लालच और कारूणिक भावनाओं को उकसाया''[10] और राजनैतिक हस्तक्षेप द्वारा अंततः अवध के वस्त्र उद्योग के विकास पर विराम लग गया। नवाबों द्वारा अवध के उद्योग के विकास का प्रयास उसे समृद्धि के शिखर तक ले गया। परन्तु राजनैतिक परिस्थितियों ने उसके मार्ग को अवरूद्ध कर दिया। धीरे–धीरे वह अवध जो अपने वस्त्र उत्पादन द्वारा अन्य स्थानों की मांगों की पूर्ति करता था। वह अपने क्षेत्र की मांग पूर्ति हेतु अन्य स्थानों पर निर्मित माल पर निर्भर हो गया। अंग्रेजों के षड्यंत्र ने अवध के औद्योगिक विकास को नष्ट–भ्रष्ट कर दिया। साथ ही उसकी आत्मनिर्भरता को भी समाप्त कर दिया।

lanHk lwph

1 कुरैशी, एच.ए., दि मुगल्स दि इंग्लिश एण्ड दि रूलर्स ऑफ अवध : अ कैलिडोस्कोपिक स्टडी, न्यू रालय बुक कम्पनी, लखनऊ, पृ. 1

2 नकवी, एच.के.; अरबन सेन्टर्स एण्ड इण्डस्ट्रीज इन अपर इण्डिया, 1556–1803, बम्बई, 1968, पृ. 275

3 पूर्वोक्त, पृ. 140

4 बेली, सी.ए.; रूलर्स, टाउन्समैन एण्ड बाजार्स नार्थ इण्डियन सोसायटी इन दि एज आफॅ ब्रिटिश एक्सपेंशन, 1770–1870, कैम्ब्रिज, 1983, पृ. 146

5 चौधरी, के.एन.; दि ट्रेडिंग वर्ल्ड ऑफ एशिया एण्ड दि इंग्लिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी 1600–1760, नई दिल्ली 1978, पृ0 243

6 नकवी, एच.के.; अरबन सेन्टर्स, पृ. 143

7 बेली, ऐी.ए., रूलर्स, टाउन्समैन, पृ. 144

8 सिन्हा, एन.के.; दि इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ बंगाल फ्राम प्लासी टू परमानेंट सेटलमेंट, वाल्यूम–II, कलकत्ता, 1962, पृ. 176

9 बेली, सी.ए., रूलर्स, टाउन्समैन, पृ. 67

10 चन्द्रा, विपिन, माडर्न इण्डिया, एन.सी.ई.आर.टी., दिल्ली, 1971, पृ. 86

• • •

43

21 oh lnh e tutkfr;k e jktuhfrd tkx:drk iUuk fty d lUnHk e

*Mk- fxfjt 'kkD;

स्वतंत्रता के पश्चात् से ही राष्ट्रीय संविधान निर्माता इस दिशा में प्रयासरत थे कि वनांचलों में निवास कर रही जन जातियों का निरन्तर उत्थान हो। वे सभ्य भारतीय नागरिकों की भांति उन्हे शिक्षित व विकसित कर समाज की मुख्य धारा से जोड़ा जा सके। मानव समाज के वैकासिक चरणों में अनुशासन एवं नियंत्रण का महत्वपूर्ण स्थान है।

राष्ट्र की कल्पना में चार महत्वपूर्ण तत्व है :– जनसंख्या, भूभाग, सरकार और सम्प्रभुता । किसी भी राष्ट्र की सम्प्रभुता का महत्वपूर्ण आधार है शासन प्रणाली। किसी भी राष्ट्र के शासन प्रणाली की गुणवत्ता इस बात पर निर्भर करती है कि उस राष्ट्र के नागरिकों में राजनीतिक जागरूकता और सशक्त विपक्ष राष्ट्र निर्माण में प्रभावशाली भूमिका अदा करता है।[1]

अध्ययन के दौरान जनजातियों की समस्याओं का अध्ययन राजनैतिक जागरूकता एवं आज के 21वीं सदी के भारत में मध्यप्रदेश के पन्ना जिले की जनजातियों में राजनैतिक जागरूकता में आई वृद्धि को समझने का प्रयास किया है। 21वीं सदी के भारत ने पूरी दुनिया के समक्ष अपने विकास के बढ़ते कदमों से सबको चकित किया है। तो इन सब कारणों से जनजातियां भी अछूती नही रह गई है।[2]

पन्ना जिले का इतिहास गौरवमय है। यहां पद्मावती महाराजा छत्रसाल और स्वामी प्राणनाथ जैसे महापुरूषों ने वीरता एवं धर्म का समन्वय प्रस्तुत किया है। पन्ना जिले का प्राचीन ऐतिहासिक साक्ष्य उसकी तात्कालिक भव्यता पर प्रकाश डालते है। कलयुग से पूर्व त्रेतायुग में भगवान राम तथा द्वापर में पाण्डवों ने अपने वनवास का कुछ समय यहां व्यतीत किया ऐसी जन मान्यता है। वृहस्पति कुन्ड, पाताल कुन्ड, सारंग मंदिर, पाण्डव जल प्रपात और द्रोपती कुन्ड इस जन मान्यता के प्रभाव है।[3]

प्राचीन भारत में मध्यप्रदेश के क्षेत्रों में जंगली अप्रिय जन जातियां ही निवास करती थी इसका उल्लेख विभिन्न ग्रंथों में मिलता है। डॉ. रमेश चन्द्र मजूमदार ने

अपनी पुस्तक भारतीय जनता का इतिहास और संस्कृति श्रेष्ठ युग में लिखा है कि भारतीय आर्यो की सामाजिक परिधि में चण्डाल तथा ऐसी अन्य जातियों से हट कर आदिवासी कबीले थे। (पुलिन्द, शवर, किरात) जो विन्ध्याचल के जंगलों में और पहाड़ों में रहते थे। दशकुमार चरित्र, हर्ष चरित्र, कादम्बरी तथा परिवर्ती गुप्तकाल की अन्य कृतियों में इन जनजातियों की वेशभूषा उनकी धार्मिक प्रथाओं और सामाजिक रीति रिवाजों की झांकी मिलती है ।[4]

कादम्बरी में अंकित है कि सातवीं सदी में विन्ध्य प्रदेश के जंगलों में रहने वाले शवर नरबलि जैसी घृणित और विचित्र प्रथाओं के आदी थे। वे शिकार से गुजारा करते थे मांस और शराब का सेवन करते थे। और विवाह के लिए स्त्री का अपहरण करते थे। प्राचीन काल में यह क्षेत्र मगध साम्राज्य के अधीन था। इसके पश्चात् आर्य साम्राज्य के अन्तर्गत रहा। शुंग, कण्य फिर कुषाणों के शासन के पश्चात् लम्बे समय तक गुप्तकालीन शासकों ने यहां शासन किया। गुप्त वंश के पश्चात् विभिन्न गण राज्यों में अपनी स्वतंत्रता स्थापित की। चन्देल शासकों ने इस क्षेत्र पर काफी समय तक शासन किया। पन्ना जिला का क्षेत्र तत्कालीन समय में "जेज्जाक" के नाम से जाना जाता था। वर्तमान समय का बुन्देलखण्ड तत्कालीन समाज में "जेज्जाकमुक्ति" था। यही चन्देल बंश की उत्पत्ति और विकास हुआ। महोबा उनकी राजधानी थी और खजुराहो सांस्कृतिक नगरी।[5]

इस क्षेत्र की वास्तविक सामाजिक सांस्कृतिक प्रगति चन्देल युग में हुई। चन्देलों के उपरांत अहिरवार और बाधवगढ़ नरेशों के अधीन रहा। मुगल शासन की स्थापना के पश्चात् अकबर ने यहां कालींजर में विजय प्राप्त की। सन् 1577 से 1605 तक यह क्षेत्र राजाराम सिंह ओरछा नरेश के पास रहा। सन् 1675 में महाराजा छत्रसाल ने यहां अपने राज्य को स्थापित किया और इसका नाम "पन्ना" रखा। उन्होंने 1732 तक शासन किया सन् 1680 में स्वामी प्राणनाथ जी का आगमन हुआ जिन्होंने धर्म के क्षेत्र में एक नये अध्याय का सूत्रपात किया। प्रणामी धर्मावलम्बी आज भी पन्ना स्वामी प्राण नाथ जी के ही नाम से जानते है।[6] आज यह नगर हीरा रत्न के लिए पूरे विश्व में प्रसिद्ध है।

iUuk fty e tu tkfr;k

हमारे समाज के निर्माण में ग्रामीण व शहरी संस्कृति का योगदान तो है ही परन्तु जन जातीय संस्कृति की नीव पर ही हमारी संस्कृति के भवन तैयार हुए है।

भारतीय जन जातियों को डॉ. मैमोरिया, डॉ. गुहा, मदन एवं श्यामाचरण दुबे ने भिन्न भागों में वर्गीकृत किया है। भौगोलिक वर्गीकरण के अतिरिक्त प्रजातीय व भाषायी वर्गीकरण किया गया है। जिससे अध्ययन करने में सुविधा हो।

सांस्कृतिक आधार पर भारतीय जन जातियों को वैरियर एल्विन ने चार भागों में विभक्त किया है ।

iFke Lrj – आदिम अवस्था की जनजातियां जो दुर्गम स्थानों पहाड़ों निर्जन स्थानों पर रहती है। खेती या शिकार के द्वारा उदर पूर्ति करती है।

f}rh; Lrj – ये अपनी परम्पराओं और विश्वासों को स्थाई बनाये हुए है। लेकिन आदिम स्थिति की जन जातियों की तरह सभ्य समाज के प्रति सशंकित नही रहती। इनमें व्यक्तिगत सम्पत्ति की भावना होती है। सभ्य समाज के सम्पर्क में रहने से आज इनमें बदलाव हो रहा है।

r`rh; Lrj – इस स्तर में सर्वाधिक जन जातियां है ये कृषि करने के साथ ही साथ जीविको–पार्जन के लिये समीपस्थ नगरों व गांवों में भी जाते है। इसलिये इनकी संस्कृति विश्वास, धर्म, प्रथायें, राजनैतिक संगठन में परिवर्तन हो रहा है ।

prFkk Lrj – ये कुलीन जन जातियां है आधुनिक संस्कृतियों के सम्पर्क में आने के बाद भी इन्होंने अपनी मूल संस्कृति को नष्ट नहीं होने दिया।[7]

वैरियर एल्विन के सांस्कृतिक विभाजन में पन्ना जिले की जन जातियों का स्थान दूसरा है। अर्थात् पन्ना जिले की जन जातियां आदिम जीवन में कुछ परिवर्तन कर जीवन बिताने वाली जातियां है। डॉ. मजूमदार के वर्गीकरण में पन्ना जिले की जन जातियां आंशिक हिन्दू प्रभाव से प्रभावित श्रेणी में आती है।[8]

जनगणना 2001 के अनुसार पन्ना जिले में अनुसूचित जन जातियों की कुल संख्या 1,31,796 है। जिसमें 67,834 पुरूष, 63,962 स्त्रियां, 1,27,120 ग्रामीण तथा 4,676 नगरीय है। जिले में जन जाति का प्रतिशत 15.35 है। पन्ना जिले में निवास करने वाली मुख्य जन जातियां गोंड़, मारिया, सौर, सोनर, कोंदर, कोल और मवासी आदि है।[9]

tu tkfr;k e jktufrd tkx:drk

राजनीति के क्षेत्र में कृमिक धनात्मक वृद्धि को राजनैतिक विकास कहते है । अनुसूचित जन जातियों में राजनैतिक जागरूकता का अभाव उन्हें प्राप्त होने वाले आवश्यक अधिकारों और लाभों से वंचित करता है ।

शोधार्थी ने अध्ययन के दौरान जन जातियों में राजनैतिक जागरूकता को समझने के लिये उनमें राजनैतिक ज्ञान, चुनाव प्रचार एवं समर्थन तथा मतदान संबंधी तत्वों को आधार बनाया है ।[10]

शिक्षा का महत्व तथा प्रभाव प्रत्येक समाज में रहा है । चाहे वह आदिम समाज हो या आधुनिक समाज हो । चिन्तक एवं विचारक सुरेश सोनी ने शिक्षा के महत्व के संबंध में शिक्षा और शिक्षकीय दायित्व विषय पर विचार व्यक्त किये है । कि सारी दुनिया में यह माना जाता है कि परिवर्तन और विकास का माध्यम शिक्षा है ।

आदिवासी क्षेत्र में सर्वाधिक जोर शिक्षा के गुणात्मक एवं मात्रात्मक सुधार पर दिया गया है। राज्य में आदिवासी उपयोजना के अंतर्गत आने वाले 89 आदिवासी विकास

खण्डों की शिक्षण संस्थायें विकास विभाग चलाता है। अज्ञानता का गहरा पर्दा होने के कारण जन जातियां विवाद ग्रस्त दिखाई पड़ती है। और सभ्यता में पिछड़ी हुई है।[11]

1997–98 के आंकड़ों के अनुसार जिले की जन जातियों में राजनैतिक ज्ञान की श्रृंखला में स्थानीय राजनैतिक गतिविधियों की जानकारी है। स्त्रियों की अपेक्षा पुरूषों को समान रूप से प्रचार में सहभागिता करता है। परन्तु समर्थन की प्रकृति अनिश्चित् है। हम कह सकते है कि परम्परागत व आधुनिक संस्कृति का प्रभाव अभी भी बना हुआ है। प्राप्त सम्भावनाओं पर विचार करने से 2000–01 के आंकड़ों के आधार पर राजनैतिक जागरूकता में निरन्तर वृद्धि की सम्भावनायें दिखाई देती है। सामान्य रूप से भारतीय राजनीति एवं भारत के सापेक्ष राजनैतिक गतिविधियों के अंतर्गत मतदान व्यवहार को प्रभावित करते है। पन्ना जिले की जन जातियों के मध्य स्थानीय कारण अधिक प्रभावशाली है। इनमें प्रमुख है आर्थिक हित, राजनैतिक दल, क्षेत्रीयतावाद आदि।[12]

ऐसा नहीं है कि इस वर्ग में कोई राजनैतिक, सामाजिक स्तर हीनता और अज्ञानता हो। ऐतिहासिक पन्नों पर इनके राजनैतिक संगठनों का उल्लेख बराबर मिलता है। प्रत्येक जन जातीय समुदाय का विभिन्न संस्तरों तथा गोत्र गांव की भूमिका एक सर्वोच्च नेता होता है। जो सर्व स्वीकार प्रतिष्ठित होता है।[13]

21oh lnh e jktuhfrd tkx:drk e of)

आदिवासी भारतीय जन जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है। हमारे राजनैतिक सामाजिक कार्यकर्ता एवं न्यायविद् सभी आदिवासियों के अधिकारों के प्रति सजग हो गये है। साथ ही एक बहुत बड़ा आदिवासी वर्ग भी स्वयं अपनी समस्याओं के प्रति जागरूक हो चुका है।

पंचायतों में महिलाओं तथा जनजातीय आरक्षण सुनिश्चित होने से जन जातीय महिलाओं का नया नेतृत्व उभर रहा है। पंचायती राज्य व्यवस्था में स्वयं प्रशासन के द्वारा आदिवासियों की अपनी परम्पराओं को बनाये रखते हुए राजनीति में भागीदारी का मौका प्राप्त हो रहा है।[14]

वयस्क मताधिकार तथा प्रजातांत्रिक राजनैतिक प्रक्रिया ने आज आदिवासी राजनीति के स्वरूप को ही बदल दिया है। यद्यपि प्रारम्भ से ही आदिवासी राजनीति प्रकृति से प्रजातांत्रिक रही है। आज जन जातियों में राजनीति के स्वाद को चख लिया है और अब एक नया राजनैतिक मुहावरा विकसित करना चाहता है। इसने जाति वर्ग के नेताओं से राजनीति का खेल सीख लिया है। अब वह राजनीति के पारम्परिक नियमों तक ही सीमित नही है। अब यह अपनी गोटियां भी बिछाने लगा है। वह आज आदिवासियों की समस्याओं को राजनीतिक रंग दे रहा है। यह राजनैतिक क्षेत्र में सत्ता को प्राप्त करने के लिये साम, दाम, दण्ड, भेद की नीति अपना कर हिन्सा से भी परहेज करते। आदिवासी अंचलों में कार्यरत असंतुष्ठ और स्वार्थी आदिवासी तथा गैर पराकाष्ठा है। इस प्रकार

आज राजनैतिक जागरूकता के साथ ही आदिवासियों की राजनैतिक संस्कृतियों में बहुत तेजी से बदलाव आ रहा है।[15]

हम एक नये युग की दहलीज पर खड़े है। भारतीय समाज व अन्य सदस्यों के साथ जन जातीय लोंगों ने भी इस युग में प्रवेश किया है। किन्तु वे किसी को अपने जीवन की समन्वयता भंग करने की अनुमति देने के लिये तैयार नहीं है। वे नियोजकों, प्रशासको तथा सामान्य जन मानस की ओर से अपने जीवन लोक रीतियों तथा समस्याओं के प्रति श्रेष्ठता सम्वेदन शीलता के लिये सराहना के अधिकारी है।[16]

lUnHkZ xzFk lwph

1. डॉ. शाक्य गिरिजेश, जनजातियों में राजनैतिक जागरूकता एक विश्लेषात्मक अध्ययन (सन्दर्भ–पन्ना जिला) शोध प्रबन्ध 1998 पृष्ठ –1
2. डॉ. मजूमदार रमेश चन्द्र श्रेष्ठ युग 1984 (दिल्ली मोतीलाल वनारसी दास) पृष्ठ–623
3. "कादम्वरी" की पेटर्सन द्वारा संपादित 1900 बम्बई पृष्ठ–59
4. डॉ. शाक्य गिरिजेश, जनजातियों में राजनैतिक जागरूकता एक विश्लेषणात्मक अध्ययन (सन्दर्भ–पन्ना जिला) शोध, प्रबन्ध 1998 पृष्ठ–85–86
5. डॉ. सिंह एन. के. भारत में सामाजिक परिवर्तन आदित्य पब्लिशर्स 2000 पृष्ठ 61
6. दैनिक भास्कर सतना द्वारा प्रकाशित दिनांक 10.8.2003 पृष्ठ–4
7. डॉ. दीक्षित ध्रुव यूनीफाइड समाजशास्त्र शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी संशोधित संस्करण पृष्ठ–195
8. डॉ. सिंह पी.वी. पर्यटन विकास, आदित्य पब्लिशर्स 2004 पृष्ठ–15
9. जिला सांख्यकीय कार्यालय पन्ना जिला पन्ना म.प्र. 2001 पृष्ठ–13
10. रचना पत्रिका म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल मई जून 2012 पृष्ठ–68–70
11. श्रीवास्तव लोकेश जनजातीय परिदृश्य यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन 2010 पृष्ठ–66
12. डॉ. शाक्य गिरिजेश जनजातियों में राजनैतिक जागरूकता एक विश्लेषणात्मक अध्ययन (सन्दर्भ पन्ना जिला) शोध प्रबन्ध 1998 पृष्ठ–91
13. श्रीवास्तव लोकेश जनजातीय परिदृश्य यूनीवर्सिटी पब्लिकेशन 2010 पृष्ठ–77
14. एम. कुमार आदिवासी संस्कृति एवं राजनीति विश्वभारती पब्लिकेशन 2009 पृष्ठ–132
15. डॉ. हरदेनिया एच. के. भारत में सामाजिक परिवर्तन आदित्य पब्लिकेशन पृष्ठ–111
16. हसनेन नदीम (छठां संस्करण) जवाहर पब्लिशर्स एवं डिस्ट्री ब्यूटर्स जनजातीय भारत प्राक्कथन पेज–6

● ● ●

44

cqUnsy[k.M dk ykdukV~;

***Mk- jktho flag**
****Mk- vferk jkuh flag**

बुन्देलखण्ड मध्य भारत का एक प्राचीन क्षेत्र है। इसका विस्तार उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश में भी है। यदि देखा जाए तो बुन्देलखण्ड में मध्य प्रदेश के दतिया, टीकमगढ़, छतरपुर, सागर, पन्ना, दमोह, ग्वालियर जिलों का कुछ अंश समाहित है। इसके साथ ही साथ उत्तर प्रदेश के झाँसी, जालौन, ललितपुर, बाँदा, हमीरपुर, महोबा, चित्रकूट धाम भी समाहित हैं। उपरोक्त जिलों का समन्वित क्षेत्र एक सांस्कृतिक इकाई है। इस क्षेत्र की मुख्य बोली बुंदेली है। अनेक विविधताओं (भौगोलिक और सांस्कृतिक) के होने के कारण भी अपनी एकता और सरसता के कारण यह क्षेत्र अनूठा जान पड़ता है।

"बुन्देलखण्ड में लोकसाहित्य के संग्रह का कार्य बड़े ही उत्साह के साथ हुआ। सन् 1944 ई॰ में ओरछा के तत्कालीन महाराजा के संरक्षण में टीकमगढ़ में 'लोकवार्ता परिशद्' की स्थापना की गई। इसमें बुन्देलखण्ड के लोकगीतों, लोकगाथाओं तथा मुहावरों के संकलन का कार्य वैज्ञानिक पद्धति से हुआ। इस परिषद् के तत्वावधान में 'त्रैमासिक पत्रिका' भी प्रकाशित होती थी। लोकसाहित्य के विद्वान श्री कृष्णानन्द गुप्त इसके सम्पादक थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात ओरछा राज्य के भारतीय संघ में विलयन के साथ ही इस परिषद् का भी विलयन हो गया। इसी समय पं॰ बनारसी दास चतुर्वेदी ने 'मधुकर' पत्र निकालकर बुन्देली लोकसाहित्य को प्रकाश में लाने का प्रयास किया किन्तु यह पत्र भी अधिक दिन नहीं चल सका इसके पश्चात झाँसी जिले के मऊ रानीपुर में 'ईसुरी परिषद्' की स्थापना हुई। इस परिषद् का उद्देश्य भी बुन्देली लोकसाहित्य का संकलन व प्रकाशन करना था।"[1]लोक मनोरंजन के लिए लोकनाट्य विशिष्ट साधन है। जहाँ कृष्ण की समीपवर्ती भूमि तथा राम की कर्मभूमि होने के कारण रासलीला रामलीला

***lgk;d izk/;kid fgUnh N=lky 'kkldh; LukrdksRrj egkfo|ky; iUuk] Ek-Ik-**
****,lksfl,V izksQslj] fgUnh] uo;qx dU;k egkfo|ky; jktsUnzuxj y[kuÅ]m-Ik-**

की धूम मची रहती है, वहीं बुन्देलखण्ड के कुछ निजी लोकनाट्य भी हैं।

"लोकनाट्य खुले हुए रंगमंच पर हुआ करते हैं, इसके लिए किसी विशिष्ट मंच की आवश्यकता नहीं होती। जनता मैदान में आकाश के नीचे बैठकर नाटक का अभिनय देखती है। ऊँचा टीला या किसी मन्दिर के आगे ऊँचा चबूतरा ही रंगमंच का काम देता है। कहीं–कहीं तो लकड़ी के ऊँचे तख्ते बिछाकर मंच तैयार कर लिया जाता है।"[2] जो असली लोकनाट्य होते हैं, वे लिखे नहीं जाते अपितु रचे जाते हैं। ये दर्शकों के मन में पहले से ही समाए रहते हैं। दर्शक नाटक देखने नहीं आते वरन कलाकारों की प्रतिभावान अदायगी देखने आते हैं।"लोकनाट्य का आकर्शण केन्द्र उसकी मंचन प्रक्रिया है, कथानक नहीं। इसमें दृश्य विधान होता ही नहीं, न ही रंगमंच की कोई सजावट ही होती है। अभिनेता जो कहता है वह भी अधिक महत्व नहीं रखता, दर्शक के मन पर उस नाटक की जो तस्वीर बनी हुई है उसका चित्रण किस प्रकार होता है उसी का महत्व है"।[3]

HkkM&HkMrh–भँड़ैंती उत्तर प्रदेश की एक लोकप्रचलित नाट्य विद्या है। लोकनाट्य बुन्देलखण्ड के साथ–साथ अवध अंचल तथा कन्नौजी आदि, अंचलों में भी प्रसिद्ध है। सन् 1960 ई॰ से ही भाण परम्परा के स्पष्ट संकेत मिलने लगे थे। बुन्देल के राजा कीर्तिवर्मन तथा पर्मिददेव तथा दिल्ली के सल्तनत के संरक्षण में भाणों का महत्व और भी अधिक बढ़ गया था। रईसों तथा सामंतों की महफिलों में इनको उचित स्थान मिला। किन्तु जैसे 2 रियासतों का ह्रास हुआ वैसे ही धीरे–धीरे इनका भी ह्रास होता गया।

भाड़ लोग नक्काल (नकल करने वाले) समझे जाते थे। यह गाने बजाने और नाचने में बहुत प्रवीण होते थे। ये भाड़ औरत तथा पुरूष दोनों का रूप धारण करते थे लखनऊ क्षेत्र में उर्दू का एक शेर प्रसिद्ध है–

जंगल वीरान जहां भाड़ न वाशद
महफिल वीरान जहां भाड़ न वाशद[4]

भड़ैती लोकनाट्य के लिए वस्तुतः किसी विषिशट मंच की आवश्यकता नहीं होती। भड़ैती का मंच सतही स्थान खुला मैदान व चबूतरा होता है। इसके पात्र कोई विशिष्ट साज श्रृंगार नहीं करते अपितु अपने हावभाव तथा गतिविधि से हास्य उत्पन्न करते हैं। इनके गोतों में नारी–पुरूष सभी पक्षों के गीत रहते हैं–

सरौंता कहाँ भूलि आये मोर ननदोइया
पान के खबइया, सुपारी के फोड़इया।। सरौता कहां भूलि ......।।[5]

इस प्रकार भँड़ैंती लोकनाट्य में लयकारी, नृत्य अभिनय आदि में कुछ न कुछ ऐसा विशेष दीखता है जो हास्य की अनुभूति करा देता है वर्तमान समय में इसका प्रचलन कुछ कम हो गया है।

Lokx&यह लोकनाट्य बुन्देलखण्ड तथा अन्य अंचलों में अत्यन्त प्रसिद्ध है। हिन्दी साहित्य में स्वांग परम्परा सबसे प्राचीन मानी जाती है। स्वांग की प्राचीनतर नाट्य

परम्परा का उल्लेख सिद्ध कण्हपा ने विक्रम की नवीं शताब्दी में डोमनी के आह्वान गीत में किया है–

नगर बाहिरे डोंबी तोहारि कुड़िया छइ छोइ जाइ सो ब्राह्म नाड़िया।
आली डोंबी तोए सम करिब या सांग निघिड़ कण्ह कपाली जाइ लाग
एक सौ पदमा चौषट्ठि पाखुड़ि तेहि चढ़ि नाचअ डोंबी वापुड़ी। [6]

ब्रजयानियों की योगतंत्र साधना में डोमिनी आदि का सेवन एक आवश्यक अंग माना गया है। डोम जाति द्वारा स्वांग भरने की परम्परा अभी भी दिखाई पड़ती है। डोम स्त्रियाँ पुरूषों का वेश बनाकर स्वांग भरती थीं। वस्तुतः डोम जाति का व्यवसाय ही स्वांग भरना है। आल्हा खण्ड में विभिन्न अवसरों पर जोगी के स्वांग का उदाहरण मिलता है। जायसी ने भी स्वांग का उल्लेख किया है कि अलाउद्दीन ने चित्तौड़ भेजने के लिए जोगिन का सफल स्वांग करने वाली एक वेश्या को दूती बनाकर चित्तौड़ भेजा था–

पातुरि एक हुतित जोगी सवांगी। साह औनार हुत ओही मांगी।
जोगिनि भेस वियोगिनी कीन्हा, सींगी सबदमूल तत लीन्हा।
पदमिनि पहं पठई करि जोगिनि, बेगि आनु करि विरह वियोगिनि।। [7]

जायसी के पूर्व कबीरदास के समय में स्वांग और तमाशा आदि का इतना अधिक प्रचार हो रहा था कि साधु महात्माओं के आदेश अवज्ञा के कानों में सुने जाते थे। कबीर ने लिखा भी है–

कथा होय तंह श्रोता सोवैं, वक्ता मूंड पचाया रे।
होय जहां कहीं स्वांग तमाशा, तनिक न नींद सताया रे।। [8]

स्वांग लोकनाट्य का विषय सामाजिक कुरीतियों पर तीखा व्यंग्य होता है। इसके लिए भी कोई मंच नहीं बनाया जाता। इसमें विदूषक की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। संगीत में ठोलक, ठपला, नगड़िया, मृदंग आदि वाद्य यंत्र का प्रयोग किया जाता है। श्रृंगार के लिए राख, कोयला, काजल आदि वस्तुएँ उपयोग में लायी जाती हैं। शताब्दियों से स्वांग परम्परा मौखिक चली आ रही थी। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में लेखबद्ध स्वांग का प्रमाण मिलता है।

dkMjk&कांडरा बुन्देलखण्ड की 'रजक' जाति द्वारा किया जाने वाला लोकनाट्य है। भक्तिकाल में रास परम्परा से प्रभावित एवं आकर्षित हो निर्गुण ब्रह्म के भक्तों ने कांडरा नृत्य का विकास किया। प्रारम्भ में यह लोकनाट्य राई की तरह का लोकनृत्य था। इसमें निर्गुनिया भजन गाता है तथा गीत के अनुरूप आंगिक अभिनय कर नृत्य तथा हाव–भाव प्रदर्शित करता है। कांडरा का मंच खुला होता है मंच के पास वादक मृदंग, कसावरी, मंजीरा और झींका पर संगति करते खड़े रहते हैं। जबकि जो नर्तक होता है वह सारंगी वादन करता है। निर्गुनिया मंगला चरण प्रारम्भ करता है इसका जो मुख्य

नायक कांडरा है वह कान्ह का स्वरूप होता है, जो सराई पर रंग बिरंगा जामा पहनकर, सिर पर कलंगीदार पगड़ी बांधता है। जामा पर सफेद या रंगीन कुर्ती पहनता है। यह बीच बीच में फिरंगी की तरह नृत्य करता है। मंगलाचरण के बाद इसमें प्रेयपरक गीतनाट्य शुरू होते हैं। इसमें श्रृंगार सामग्री का विशेष प्रयोग नहीं होता। ढोला मारू, सांरगा–सदाबिरछ आदि प्रसिद्ध लोकगाथाएं रात भर चला करती हैं।

jgl &बुन्देली अंचल में ब्रज की रास लीला से प्रभावित 'रहस' परम्परा भी देखने को मिलती है। 'रहस' में अधिकांशतः दधिलीला, चीरहरण, माखनचोरी, बंसी चोरी, गेंदलीला, दान लीला आदि प्रसंग देखने को मिलते हैं। 'रहस' का मंच खुला होता है। यह सरोवर तट, मंदिर प्रांगण, नदी तट आदि कहीं भी खेला जा सकता है। इसमें मृदंग एवं पखावज, हारमोनियम, मंजीरे आदि वाद्य यंत्रों का प्रयोग किया जाता है। इसके संवाद पद्यमय होते हैं इसमें 'राधा–कृष्ण' बनने वाले पात्र सरूप कहे जाने हैं। तथा विदूषक का कार्य मनसुखा करता है। 'रहस' के अंत में सरूप की आरती के पश्चात मांगलिक गीत गाये जाते हैं फिर पर्दा गिरा दिया जाता है। बुन्देलखण्ड में कृष्ण विषयक 'रहस' के अतिरिक्त राम विषयक 'रहस' भी मिलते हैं। ये 'रहस' बुन्देलखण्ड के राजमहल के अन्तःपुर तथा उद्यानों में किये जाते थे।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि लोकसाहित्य की दृष्टि से बुन्देलखण्ड बड़ा समृद्ध एवं सम्पन्न है। बुन्देली लोकसाहित्य अपनी अनेकानेक विद्याओं के साथ लोकजीवन का बहु आयामी चित्र प्रस्तुत करता है क्योंकि लोकजीवन का समस्त चिंतन लोक साहित्य में ही प्रतिबिम्बित होता है।

I nHk&xFk

1. लोकसाहित्य की भूमिका–डॉ॰ कृश्ण देव उपाध्याय, साहित्य भवन प्रा॰लि॰के॰पी॰ कक्कड़ रोड, इलाहाबाद पृ॰ 41
2. वही पृ॰ 147
3. 'रंगायन' मासिक–सं॰ महेन्द्र भानावत। उदयपुर अप्रैल, 1975 पृ॰ 17–29
4. अवधी का लोकसाहित्य–सरोजनी रोहतगी, नेशनल पब्लिशिंग हाउस 23, दरियागंज दिल्ली–6 पृ॰ 357
5. वही पृ॰ 358
6. वही " पृ॰ 349
7. जायसी ग्रंथावली रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी संवत् 2006 वि॰ बादशाह दूती खण्ड दोहा 1, पृ॰ 275
8. कबीर वचनावली–अयोध्या सिंह उपाध्याय, नागरी प्रचारिणी सभा काशी नवा संस्करण सं॰ 2003 वि॰ पृ॰ 216

• • •

Book Review

**bfrgkl ys[ku esa izfrcaf/kr lkfgR; dh mikns;rk %

ujsUnz 'kqDy dk rF;iw.kZ ,oa vfHkuo ys[ku**

Mkš fou; JhokLro

***Hkkjrh; Lora=rk vkUnksyu vkSj izfrcaf/kr lkfgR;] la;qDr izkUr ds fo'ks"k lUnHkZ esa] ¼1907&1935½&ujsUnz 'kqDy] izdk'kd&ug: Lekjd laxzgky; ,oa iqLrdky;] rhu efrZ] ubZ fnYyh] 2014] ewY; 100/-** **ISBN -978-93-83650-17-0**

नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय के तत्वाधान में समाज और इतिहास श्रृँखला के अन्तर्गत प्रकाशित होने वाली पुस्तक ' भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन और प्रतिबंधित साहित्य संयुक्त प्रान्त के विशेष सन्दर्भ में (1907–1935)'' नरेन्द्र शुक्ल की अथक परिश्रम एवं मौलिक व तथ्यपूर्ण दस्तावेजों पर आधारित संग्रहणीय पुस्तक है। यह संदर्भ पुस्तक ब्रिटिश औपनिवेशिक काल के दौरान प्रकाशित होने साहित्य और उसके फैलाव व प्रभाव पर प्रकाश डालती है, जिन्हें ब्रिटिश प्रशासन ने प्रतिबंधित कर दिया था। दरअसल ब्रिटिश हुक्मरान और उनके अकारण राष्ट्रवादी विचारों को तीव्र गति से फैलने से इतने भयभीत हो गए थे कि उन्होंने अपनी दमनकारी नीतियों को सख्ती से लागू करना प्रारंभ कर दिया। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षो में घटी कतिपय घटनाओं और 3 जून 1907 को प्रकाशित 'संकल्प' के पश्चात् सैन्यवादियों ने भारतीय अधिकारियों एवं भेदियों पर बार–बार आक्रमण किया। भारतीय समाचार पत्रों ने उनकी अतिवादी विचारधारा का बचाव करने से बचते हुए भी उनके सर्वस्व समर्पण, त्याग और मातृभूमि के लिए सब कुछ बलिदान कर देने की भावना की प्रशंसा की। दूसरी ओर इन घटनाओं ने ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन को खुलकर दमन चक्र चलाने का अवसर दे दिया।

नरेन्द्र शुक्ल ने अपनी पुस्तक में निर्भीकता और बेबाकी से प्राथमिक स्त्रोतों का दोहन करते हुए उन तथ्यों को उजागर किया है जो अभी तक सामने नहीं आए थे। जून 1908 में

*** Department of History Chhatrasal Govt. Post Graduate College Panna, (M.P.)**

सरकार ने दो दमनकारी अधिनियम पारित किए। पहला 'विस्फोटक अधिनियम' तथा दूसरा समाचार पत्र (अपराध प्रोत्साहन) अधिनियम VII। इसने सरकार को अतिवादी व्यक्तियों एवं समाचार पत्रों के विरूद्ध अनेक शक्तियॉ दीं। इन अधिनियमों के अंतर्गत अभियोग चलाकर सरकार को प्रयासपूर्वक युगांतर, वन्देमातरम्, संध्या इत्यादि पत्रों को कुचल दिया। किन्तु जहाँ एक ओर देश में अतिवादी साहित्य व पत्रों को कुचला जा रहा था, वहीं संयुक्त प्रांत में अतिवादी पत्रकारिता की एक नई लहर प्रारंभ हुई। स्वराज्य, कर्मयोगी और हिन्दी प्रदीप जैसे पत्र इसके वाहक बने।

संयुक्त प्रांत के सरकार विरोधी पत्रों में इलाहाबाद से प्रकाशित होने पत्र 'स्वराज्य' में प्रकाशित अनेक लेखों को प्रतिबंधित करते हुए सरकार ने इनके लेखकों व प्रकाशकों को राजद्रोह का मुकदमा चलाते हुए कठोर कारावास की सजाऍ सुनाई। ज्ञातव्य है कि 'स्वराज्य' के आठ संपादकों को कुल मिलाकर 125 वर्ष की सजा हुई। इलाहाबाद से ही बालकृष्ण भट्ट के संपादन में प्रकाशित होने वाले पत्र हिन्दी प्रदीप के अप्रैल 1908 के अंक में प्रकाशित एक कविता 'बम क्या है ?' के कारण सरकार ने इस पत्र पर रोक लगा दी । सरकार ने क्रांतिकारियों के चित्रों के विक्रय पर भी प्रतिबन्ध लगा दिए ।

दरअसल नरेन्द्र शुक्ल ने अपनी इस संक्षिप्त परन्तु सारगर्भित संदर्भ पुस्तक में बींसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में ब्रिटिश प्रशासन द्वारा प्रतिबंधित किए गये समाचार पत्रों व लेखों की विस्तृत मीमांसा प्रस्तुत करते हुए राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली में संग्रहीत अभिलेखीय सामग्री का प्रयोग करते हुए उन्हें परिपुष्ट भी किया है। तथ्यों के अत्यंत कुशलता से एक के बाद एक लड़ियों की मानिंद पिरोते हुए लेखक ने एक ऐसा ताना–बाना बुना है जिसमें तथ्यों की भरमार है एवं अनछुए रहस्यों पर पर्दा उठाने का प्रयास है, जो प्रशंसनीय है।

अभिव्यक्ति की विभिन्न विधाओं पर सरकारी दमन चक्र का असर दिखने लगा था। 1911 में प्रकाशकों की संख्या 1910 की 2145 से 1697 हो गई । संयुक्त प्रान्त के अखबारों में आए दिन किसी न किसी प्रेस या समाचार पत्रों के विरूद्ध जुर्माने या जब्ती अथवा इन कारणों से प्रेस और पत्र के बन्द होने की खबरों को पढ़ा जा सकता था। प्रेस अधिनियम 1910 के अधीन न केवल ऐसी पुस्तक मुद्रित करने वाले प्रेस की जमानत जब्त हो सकती थी, बल्कि प्रेस तक जब्त हो सकता था। नरेन्द्र शुक्ल ने ऐसे अनेक उदाहरणों को तथ्यपूर्ण अभिलेखीय सामग्री के साथ प्रस्तुत कर पुस्तक की पठनीयता में रोचकता उत्पन्न की है जिनसे ब्रिटिश प्रशासन की दमनकारी नीति और उससे प्रताड़ित होने वाले समाचार पत्र पर प्रकाश पड़ता है।

श्री नरेन्द्र शुक्ल ने इस पुस्तक में 2 परिशिष्टों में 4 छायाचित्र दिये हैं जो राजकीय अभिलेखागार लखनऊ पत्रावली 1385, पर्चा 'रण निमंत्रण' पर प्रतिबंध की सूचना तथा रा. अ.ल. पत्रावली संख्या 1860, चित्र बटुकेश्वर दत्त पर प्रतिबंध की अधिसूचना को दर्शाते है। प्रस्तुत पुस्तक में प्राथमिक स्त्रोत सामग्री के रूप में राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली में संग्रहित 10 प्राथमिक स्त्रोत, राजकीय अभिलेखागार लखनऊ में संग्रहीत 27 प्राथमिक स्त्रोत तथा द्वितीय स्त्रोत सामग्री के रूप में 9 स्त्रोतों का बखूबी उपयोग किया गया है। विभिन्न घटनाक्रमों एवं ब्रिटिश प्रशासन की दमनात्मक कार्यवाही को 101 फुट नोट्स के

साथ परिपुष्ट करते हुए इसे ऐसा स्वरूप प्रदान किया गया है जो गागर में सागर भरने जैसा है। स्त्रोत सामग्री सहित यह पुस्तक मात्र 48 पृष्ठों मे समाप्त हो जाती है, परन्तु 20 वीं शताब्दी के 1907 से 1935 के समग्र भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान ब्रिटिश प्रशासन और प्रतिबंधित साहित्य के विविध पहलुओं की क्रमिक मीमांसा प्रस्तुत करती है। इस पुस्तक में तत्कालीन समय में ब्रिटिश सरकार द्वारा लागू किये जाने वाले विभिन्न अधिनियमों, उनकी धाराओं, तथा उसके प्रभावों की तो विस्तार से विवेचना ही की गई है साथ ही उन अधिनियमों से प्रभावित व प्रताड़ित होने वाले राष्ट्रीय आन्दोलन की महत्वपूर्ण नेताओं व उनके समाचार पत्रों पर लगाये गये प्रतिबंध, व सजाओं का भी उल्लेख किया गया है। इस क्रम में पंडित मदन मोहन मालवीय, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी सहित अनेक क्रांतिमार्गियों व राष्ट्रीय भावनाओं से ओत प्रोत साहित्य सृजकों व पत्रकारों का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा जिन्होंने दमन के कुचक्र के खिलाफ अपनी जोश की भावनाओं को प्रज्जवलित रखा। इस पुस्तक में संयुक्त प्रांत से प्रकाशित होने वाले 6 समाचार पत्रों का उल्लेख भी किया गया हैं जिन्हें 'काली सूची' में डाल दिया गया था। इनके नाम हैं 1. प्रताप– कानपुर 2. अवध पंच– लखनऊ 3. एडवोकेट – लखनऊ 4. नई रोशनी – इलाहाबाद 5. अवध गासी – लखनऊ एवं 6. उस्ताद – उरई । समाचार पत्रों को प्रतिबंधित करते हुए काली सूची में डालने का अर्थ था कि सरकार उनमें प्रकाशित होने वाले लेखों को अपने हित में नहीं समझती थी।

इस पुस्तक में श्री नरेन्द्र शुक्ल ने न केवल प्रतिबंधित साहित्य का ही बखूबी से उल्लेख किया है, अपितु तत्कालीन समय में राष्ट्रीय भावनाओं को प्रसारित करने में प्रमुख भूमिका निभाने वाले नाटकों व अभिव्यक्ति तथा अन्य माध्यमों पर लगाये गये प्रतिबंधों का भी उल्लेख किया है। यह पुस्तक सरकार द्वारा किये जाने वाले दंडात्मक व प्रतिबंधात्मक कार्यवाहियों के साथ ही समय –समय पर लागू होने वाले विभिन्न कानूनों व सुधारों पर भी प्रकाश डालती है। जुलाई 1930 के मध्य ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन ने 7 आदेश पारित किये । इन अध्यादेशों में कार्यपालिका के अधिकार बहुत अधिक बढ़ा दिये जिसके कारण उग्रवाद एवं महत्वपूर्ण सेवाएं जैसे प्रशासन, पुलिस, सैन्य तथा संचार व्यवस्थाओं हेतु सामान्य दंड प्रक्रिय रद्द कर दी गई। इनमें से दो अध्यादेश प्रेस को सीधे प्रभावित करने वाले थे : 1. प्रेस अध्यादेश II (27 अप्रेल 1930) एवं 2. अनाधिकृत समाचार पत्र एवं पत्रकों पर नियंत्रण हेतु अध्यादेश । प्रेस अध्यादेश 1930 के अन्तर्गत संयुक्त प्रान्त के 52 प्रेसों से जमानत राशि मांगी गई थी तथा 84 प्रेसों को चेतावनी दी गई थी। इसी प्रकार इस समय तक संयुक्त प्रांत के 29 समाचार पत्रों से जमानत राशि मांगी गई एवं 63 समाचार पत्रों को चेतावनी दी गई। ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन द्वारा 2 जुलाई 1930 को अनाधिकृत समाचार पत्र व पत्रकों पर नियंत्रण के लिये अध्यादेश संख्या लाया VII गया। अक्टूबर 1931 में भारतीय प्रेस (विशेषाधिकार) अधिनियम 1931 पारित किया गया। इस नये प्रेस कानून में पुराने बार–बार नवीनीकरण किये जा रहे अध्यादेशों की मानों पुष्टि ही कर दी थी।

श्री नरेन्द्र शुक्ल ने अपनी पैनी दृष्टि 1930 के दशक के प्रारम्भिक वर्षो में सांप्रदायिक साहित्य के रूप में प्रतिबंधित साहित्य के इतिहास में एक पुरानी किन्तु इस बार और गहरी प्रवृत्ति को जोर पकड़ने पर डाली है। अन्य कई उदाहरण समकालीन समाज में विभाजन की दरारों का भरपूर एहसास देते है, जो आगे न केवल लगातार गहराते गये बल्कि आगे चलकर देश को विभाजन के रूप में बड़ी कीमत चुकानी पड़ी। इस पुस्तक में राष्ट्रवादी साहित्य पर लगे प्रतिबन्धों के साथ ही कतिपय उदाहरणों द्वारा प्रतिबंधों को दीर्घ संघर्ष के पश्चात् समाप्त किए जाने का भी उल्लेख किया गया है। इस क्रम में नरेन्द्र पब्लिशिंग हाउस, रैन बसेरा, चुनार ने नवजादिक लाल श्रीवास्तव द्वारा लिखित पुस्तक 'पराधीनों की विजय यात्रा ' पर लगाये गये और बाद में हटाये गये प्रतिबंध विशेष रूप से उल्लेखनीय है। किसी प्रतिबंधित पुस्तक से प्रतिबंध हटा लिया जाना मुद्रित साहित्य एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए किसी नई सुबह से कम नहीं था। परन्तु यह नई सुबह अभी विवेच्य काल से थोड़ी दूर थी। सच यह है कि यह काल तो केवल कठोर प्रतिबंध और साल दर साल लंबी होती जाने वाली प्रतिबंधित साहित्य की सूचियों के लिए जाना जायेगा। निश्चित तौर पर अपने अथक परिश्रम और अपने सूक्ष्म अन्वेषण से नरेन्द्र शुक्ल ने सम्पूर्ण पुस्तक को अभिलेखीय सामग्री से तथ्यपरक व पठनीय तो बनाया ही है, साथ ही परम्परागत स्वाधीनता आंदोलन के प्रयास में मौलिक, अप्रकाशित व सारगर्भित तथ्यों, घटनाओं की ऐतिहासिक मीमांसा प्रस्तुत करते हुए इतिहास को नई दिशा दृष्टि देने का अभिनव प्रयास किया है जो प्रशंसनीय है।

ज्ञातव्य है कि प्रतिबंधित साहित्य की यह सूचियां केवल ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन द्वारा भारतीयों पर वैचारिक अभिव्यक्ति के दमन की गवाह भर नहीं है, बल्कि साल दर साल प्रतिबंधित साहित्य की संख्या का बढ़ते जाना उस दमन के प्रत्युत्तर और स्वतंत्रता की जद्दोजहद हेतु वैचारिक संघर्ष का साक्षात् प्रमाण भी है। इस ऐतिहासिक घटनाक्रम को नये सिरे से परिभाषित करना युवा पीढ़ी के इतिहासकारों का दायित्व है जिसे श्री नरेन्द्र शुक्ल ने पूरी निष्ठा, लगन व जिम्मेदारी से निभाया है। अपने संक्षिप्त संस्करण, सादगी और रंगीन छायाचित्रों से रहित इस पुस्तक में यद्यपि ग्लैमर का अभाव है परन्तु अपने इसी रूप में यह पाठकों को सर्वाधिक आकृष्ट करती है एवं संघर्षपूर्ण स्वाधीनता आन्दोलन के दिनों की सरलता व सादगी का पुरसुकून अहसास करवाती है। यह पुस्तक न केवल ग्रंथालयों, शोध संस्थानों मे संग्रह योग्य है अपितु नवीन शोधार्थियों के लिये भी निश्चित रूप से आधारभूत शोध सामग्री प्रदाय करने वाली है। इतिहास जगत को इस अभिनव सृजन हेतु श्री नरेन्द्र शुक्ल को साधुवाद देना चाहिये ।

&% lEiknd %–

'सेन्ट्रल इण्डिया जर्नल ऑफ
हिस्टोरिकल एण्ड आर्कियोलॉजिकल
रिसर्च, ए पियर रिव्यूड एण्ड इंटरनेशनल जर्नल,
ISSN 2277 . 4157, पन्ना (म.प्र.)

●●●